पुष्प-विज्ञान

लेखक—

हनूमानप्रसाद शर्म्मा.
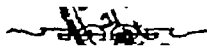
प्रकाशक—

हिन्दी-साहित्य-कुटीर,

हाथीगली, बनारस सिटी

प्रथम संस्करण] सम्वत् १९९१

आत्मनिवेदन

प्रकृति की रचना में पुष्पों-जैसी सुन्दर और उपयोगी वस्तु दूसरी नहीं है। यदि इसे हम प्रकृतिमाता का हृदय कहे तो अत्युक्ति न होगी; क्योंकि महर्षियों ने हृदय की उपमा देते हुए कहा है—

"पुण्डरीकेण सदृश हृदयं स्यादधो मुखम्।"

कमल-जैसा हमारा हृदय है। इसलिए हमारे शरीर और स्वास्थ्य के लिए पुष्प एक अत्यन्त उपयोगी वस्तु है। जिस प्रकार जरा-सी उष्णवायु का झोंका लगने से पुष्प कुम्हला जाता है, उसी प्रकार किंचित मात्र दु ख का अनुभव होने से हृदय भी मुरझा जाता है। इसलिए वास्तव मे संसार की उपयोगी वस्तुओं मे हमारे शरीर और स्वास्थ्य के लिए पुष्प भी एक वहुत ही उपयोगी वस्तु है।

परन्तु क्या हम लोग उसका उचित उपयोग करते हैं ? कदापि नहीं ! इसका उचित उपयोग आधुनिक काल में पाश्चात्य देशवासी पूर्ण-रूपेण कर रहे हैं। उनके यहाँ जितना व्यवहार वैयक्तिक रूप से पुष्प का किया जाता है, उसका शतांश या सहस्रांश भी हमारे यहाँ नहीं होता, परन्तु जितना उपयोग पुष्पों का देव-पूजन में भारतवर्ष में होता है, उतना संसार के किसी कोने में नहीं होता। किन्तु उसका रूप वड़ा ही विकृत होता है। इतना वेढंगा व्यवहार

किया जाता है कि वह नहीं के समान है। उसमें भी यह मानना पड़ेगा कि कुछ देवालयों और प्रधानत वल्लभ-सम्प्रदाय के मंदिरों में पुष्पों का बड़ा ही सुन्दर उपयोग होता है। देवार्चन अथवा किसी भी भक्ति या केवल सुन्दरता को ही दृष्टि से पुष्पों का जो उपयोग किया जाता है, वह हमारे हृदय की प्रनन्नता के लिए ही होता है।

पुष्प न केवल प्राणीमात्र के प्रसन्नता के ही साधन हैं, बल्कि औषधि रूप में भी वे बड़े ही उपयोगी हैं आज भारतीयों का यह दुर्भाग्य है कि प्रकृति की इस बहुमूल्य—बिना मूल्य और बिना श्रम के प्राप्त होने वाली इन अपूर्व वस्तुओं का उपयोग न कर गुलामी के नशे में चूर होकर अर्थ और स्वास्थ्य दोनों का नाश अपने हाथों से कर रहे हैं। जहाँ भारतीय, प्रकृति की इस अलौकिक शक्ति का निरादर कर रहे हैं, वहीं पाश्चात्य देशवासी उसका सदुपयोग कर भारतवर्ष से अर्थ और यश दोनों अर्जित कर रहे हैं। इस दशा में भी हम आँखें बन्द कर सो रहे हैं, हमारी मोह-निद्रा टूटती ही नहीं, सर पर मूसल की चोट भी गुलाब का गेंद बन रही है। हम उसके दास बने हुए हैं—और ऐसे दास कि उस दासत्व का मोचन तो दूर रहा, कभी उसके प्रति घृणा भी मन में नहीं आती।

जिन चीजों का हम आदर करना कुछ भी जान गए हैं, उनसे कितना लाभ होता है, यह सभी लोग साधारण रीति से समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ—गुलाब, केवड़ा, नागकेसर, कदम्ब, लौंग, गेंदा, दौना, मरुआ, अोशाक, अड़हुल, धव, सिरस आदि

लिए जा सकते हैं। ये कितनी स्वल्प श्रमसाध्य और उपयोगी वस्तु हैं, इनका अनुमान वे सरलता पूर्वक कर सकते हैं, जिन्होंने जीवन में अवसर आने पर इनका कुछ भी उपयोग कभी किया है।

कुछ लोग यह भी समझ सकते हैं कि मैं आयुर्वेदिक चिकित्सक हूँ, इसलिए उसका पक्षपात कर रहा हूँ। किन्तु मैं उन लोगों से यह धारणा बनाने के पूर्व ही निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मैं उस सिद्धान्त का पक्षपाती हूँ कि यदि मेरे में किसी बात की कमी है, और वह वस्तु अत्युपयोगी है; किन्तु किसी शत्रु के अधिकार में है, तो मैं उससे प्रार्थना करके उसे प्राप्त कर लूँगा और उसकी इस कृपा के लिए उसका जन्म भर ऋणी रहूँगा। ऐसी दशा में मेरे पर यह पक्षपातवाला दोषारोपण नहीं किया जा सकता; तथापि जो लोग ऐसी धारणा यों ही बना लें, उनको यह धारणा भी मैं धन्यवादपूर्वक स्वीकार करने को तैयार हूँ।

प्रायः चार वर्ष हुए, जिस समय "आहार-विज्ञान" का प्रकाशन हुआ था, उसी समय "वनस्पति-विज्ञान" और "पुष्प-विज्ञान" का सम्पूर्ण मसाला मैं तैयार कर चुका था; किन्तु इनके प्रकाशन का सुअवसर अनेक शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता और विशेषकर चिकित्सा-व्यवसाय के कारण न आ सका। किसी प्रकार गत वर्ष "वनस्पति-विज्ञान" का प्रकाशन तो अनेक साहित्यिक मित्रों और विशेषकर मित्रवर ठाकुर विजयबहादुर सिंह जी. बी० ए० के आग्रह से हो गया; किन्तु 'पुष्प-विज्ञान" को कुछ कार्य लिखो और कुछ

फुटकर कागजों पर नोट किया हुआ मैटर पड़ा ही रह गया। प्रस्तुत पुस्तक, आयुर्वेद सम्बन्धी होते हुए भी पुष्पों के परिचय के अवसर पर कुछ ऐसे पुष्पों का शृङ्गारात्मक वर्णन भी मैंने किया है, जिनका सम्बन्ध शृङ्गार-रस से है, उसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय रसिक सज्जन ही कर सकते हैं।

बहुत दिनों से 'हिन्दी-साहित्य-कुटीर' के सुयोग्य संचालक बाबू द्वारकादास का अनुरोध था कि मैं अपनी रचना में से उन्हें कोई एक पुस्तक उनकी अपनी पुस्तक-माला से प्रकाशनार्थ दूँ। एकदिन मेरे संग्रह में से उन्हें 'पुष्प-विज्ञान' का थोड़ा अंश दिखाई पड़ गया। अब वह मेरे पीछे पड़ गए और दिन में चार-चार बार तक तकाजा करना आरम्भ कर दिया, मैं भी तकाजे से तंग आ गया, और यही उचित समझा कि दे-दिलाकर इस तकाजे का अंत कर दिया जाय और बाकी मैटर भी लिखकर दे दिया।

"पुष्प-विज्ञान" के लिखने में शालिग्राम-निघण्टु, चरक, लोलिम्बराज, भर्तृहरि-शतकत्रय से विशेष सहायता मिली है। साथ ही स्वर्गीय शंकरदाजी शास्त्री, पदे महोदय के मराठी 'आर्य-भिषक्' के गुजराती अनुवाद से विशेष सहायता मिली है। अतः स्वर्गीय शास्त्रीजी महानुभाव के प्रति मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित किए बिना नहीं रह सकता। प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय खण्ड में जिन अर्वाचीन पुष्पों का परिचय दिया गया है, वह मुझे जे० केमरन, एफ० एल० एस० लिखित "फरमिंगर्स मैनुअल आफ

गार्डेनिंग फार इन्डिया" ("Firminger's Manual of Gardenig for India" By 1. Cameran F. L. S.) से मिला है। अतः मैं कैमरन साहब को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। उक्त अंग्रेजी पुस्तक के अंश का अनुवाद बा० मुकुन्ददासजी गुप्त, बी० ए० ने किया है। अतएव गुप्तजी भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में मेरा समालोचकों और विद्वान पाठकों से निवेदन है कि पुस्तक में जो त्रुटियाँ उन्हे दीख पड़ें, उन त्रुटियों की सूचना मुझे अवश्य दें। संसार मे कोई सर्वज्ञ नही हो सकता, अतः यदि कोई त्रुटि पुस्तक मे रह गई हो तो उसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। किमधिकम्।

महाशक्ति-भवन, बुलानाला
बनारस सिटी २०-२-३५

निवेदक—
हनूमानप्रसाद शर्म्मा

विपय सूची

आरम्भिक ·	३	पुष्प-धारणा के गुण ··	१६
पुष्पों की उपयोगिता	५	पुष्पों की सर्वव्यापी उपयोगिता ··	२१
वृक्षों के विपय में	७		
स्त्री और पुरुष भेद	१०		

प्राचीन पुष्प

गुलाव ·	२४	कदम्ब ···	४९
मालती ···	२७	केवड़ा ·	५१
चमेली	२९	अशोक ·	५४
वेला ·	३१	पियावाँसा ··	५६
नेवारी ··	३५	दुपहरिया	५९
चम्पा ···	३६	मखमली ···	६०
जुही ··	४०	अड़हुल ·	६२
माधवी ··	४३	अगस्त ···	६५
वकुल ·	४४	पारिजात ···	६७
मुचुकुन्द ·	४७	कमल	७०
कुन्द	४८	कुमुद ·	७२

पलाश ... ७४
घव ... ७६
सिरस ... ७८
रोहेड़ा ... ७९
शंखाहुली ... ८१
नागकेशर ... ८२
लौंग ... ८४
केसर . ८८
प्रियंगु ... ९२
अनार ... ९४
तिल ... ९५
गेंदा .. ९७
मरुआ ... ९९
दौना ... १०१
अपराजिता ... १०२
हिंगोट ... १०५
पुन्नाग ... १०७

कुछ प्रचलित पुष्प

सुरपर्ण ... १०९
गुलाबाशी .. १०९
शिरियारी ... ११०
कलाघास ... १११
राजहंस . ११२
गुलछड़ी . ११२
गुलदावदी ... ११३

अर्वाचीन पुष्प

अबूटीलन वेडफोरडियानम ११७
अल्योसिया ... ११७
असिसटेसिया ... ११७
वेगोनिया ... ११७
ब्लेटिया ... ११७
क्राइसैन्थेमम ... ११७
साइसस .. ११८
यूफोरबिया जेकीनीफ्लोरा ११८
यूकारिस अमेजोनिका ११८
यूकारिस केनडिडा ... ११८
फ्रान्सिसिया .. ११८
फ्यूचेसिया ... ११८

शंखाहुली

स० शंखपुष्पी, हि० शंखाहुली, ब० डानकुनी, म० शंखावली, गु० शखावली, क० शंखपुष्पी और लै० इवोल्व्युलस–Evolvulus.

इसके पौधे प्रायः ऊसरभूमि में पाए जाते हैं। पत्तियाँ छोटी-छोटी और मटमैली रंग की होती हैं। फूल दुपहरिया के फूल से मिलता-जुलता होता है। यह तीन प्रकार की होती है। सफेद फूलवाली को शंखाहुली, लाल फूलवाली को रक्तशंखाहुली और नीले पुष्पवाली को विष्णुक्रान्ता कहते हैं। इसका पौधा एक फिट तक का ऊँचा और छतनार होता है। तीनों प्रकार की शंखाहुली के गुण प्रायः समान ही माने गए हैं।

> शखपुष्पी कषायोष्णा कफकुष्ठविनाशिनी।
> रसायनी सरा दिव्या लालाहृल्लासजूर्तिहा॥
> लक्ष्मीमेधावलाग्नीनां वर्द्धिनी कथिता बुधै.।—रा० नि०

शंखपुष्पी—कषैली, गरम, कफ-कुष्ठनाशक, रसायन, सारक, दिव्य तथा लार गिरना, उबकाई आना और ज्वरनाशक है। एवं लक्ष्मी, मेधा, बल और अग्निवर्द्धक है।

उन्माद में—शंखाहुली और कूट का काथ बनाकर तथा शहद मिलाकर पीना चाहिए।

मृगी में—शंखाहुली के रस में शहद मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिए।

वमन में—शंखाहुली के दो तोले रस में छः माशे शहद और चार रत्ती कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से वमन बन्द हो जाता है।

यकृत में—सन्निपातजन्य अर्थात् त्रिदोषज यकृत, प्लीहादिकों में शंखाहुली का पंचांग एक पाव, घी एक सेर दोनों एक साथ पकाकर केवल घी शेष रह जाने पर एक तोला घी अथवा शक्ति के अनुसार इससे भी कम सेवन करना चाहिए। यह घी विरेचन के लिए भी उपयोगी है।

नागकेशर

सं० महौषध, हि० नागकेशर, बं० नागेश्वर, म० गु० क० नागकेशर, ता० नांगल, तै० नागकेशरालु, अ० नारमुश्क और लै० ओक्रोकार्पस लॉगफोलियस मेस्युओफेरा–Ocrocorpus Longfolius Mesuoferrea.

पुन्नाग वृक्ष की केशर और नागचम्पा की कली को नागकेशर कहते हैं। इसकी दो जातियाँ हैं। एक कोंकण और दूसरी गोवा की ओर से आती है। लाल जाति की कोंकण से और काली जाति की गोवा से आती है। नागकेशर लवंग-जैसी लम्बी डंठी में लगा रहता है। नागचम्पा की कली और इस नागकेशर के गुणों में महान अन्तर है।

नागपुष्पं कषायोष्ण रूक्ष लघ्वामपाचनम् ।
ज्वरकण्डूतृषास्वेदच्छर्दिहृल्लासनाशनम् ॥
दौर्गन्ध्यकुष्ठवीसर्पकफपित्तविषापहम् ।—भा० प्र०

नागकेशर—कषैला, गरम, रूखा, हलका, आमपाचक तथा ज्वर, खुजली, तृषा, पसीना, वमन, उबकाई, मुख की दुर्गन्ध, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त और विषनाशक है।

अर्शरोग में—यदि बालकों को रक्तार्श हो तो शक्ति के अनुसार एक माशा तक नागकेशर थोड़े-से मक्खन के साथ मिलाकर चटाना चाहिए।

प्रदर में—नागकेशर चार माशे तक मट्ठे के साथ पीसकर तीन दिन तक प्रातःकाल पीना चाहिए। छाछ और चावल खाना चाहिए। यह सोम और प्रदर दोनों में अतीव लाभदायक है।

संग्रहणी में—बालकों के अतीसार और संग्रहणी में नागकेशर की छाछ के साथ गोली बनाकर चार रत्ती प्रमाण गोली दिन में तीन चार सेवन करनी चाहिए।

प्रमेह में—नागकेशर और कंकोल तीन-तीन माशे सोलह गुना जल के साथ पकाकर अष्टमांश शेष रहने पर पीना चाहिए।

गर्भस्थिति के लिए—दो माशे तक नागकेशर का चूर्ण एक तोला घी के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए।

रक्तस्राव में—एक माशा तक नागकेशर का चूर्ण घी के साथ मिलाकर खाना चाहिए।

प्रदर में—नागकेशर को, घी के साथ घोटकर गोली बना ली जाय और प्रतिदिन साय-प्रात सुपारी बराबर गोली शीतल जल के साथ खाने से सभी प्रकार के प्रदर नष्ट हो जाते हैं।

स्वरभंग में—नागकेशर, छोटी इलायची और मिश्री सम भाग मुँह में रखकर चूसना चाहिए।

पसीना आने में—एक माशा तक नागकेशर का चूर्ण गरम जल के साथ खाना चाहिए।

लौंग

स० लवंग, हि० लौंग, व० म० गु० लवंग, क० लवंग-कलिका, ता० किरम्बेर, तै० लवगलु, अ० करनफूल, फा० मेहक्, अँ० क्लोवस्—Cloves और लै० केरियाफाइलस एरोमेटिकस—Caryophylus Aromaticus.

मलाका प्रायद्वीप के समीपवर्ती प्रान्तों में लौंग की अधिकता से उत्पत्ति होती है। भारतवर्ष में भी लौंग के वृक्ष लगाए जाते हैं। परन्तु वे वृक्ष केवल दर्शनीय होते हैं। उसमें लौंग अच्छी नहीं उत्पन्न होती। इसके वृक्ष जगवार में अधिक पाए जाते हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है। लगाने से आठ-नौ वर्ष बाद यह फूलने लगता है। देखने में इसका वृक्ष बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। इसके पत्ते भी अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। इसके फूल की कली को लौंग कहते हैं। लौंग का उपयोग खाने के पदार्थों से लेकर औषध तक में

विशेषरूप से किया जाता है। लौंग का तेल भी निकाला जाता है। यह तैल दाँत के कीड़ों को अत्यन्त सरलता पूर्वक नष्ट कर देता है। यूनानी-चिकित्सक इसे खुश्क और गरम मानते हैं। उनका कथन है कि वाह्य अंगों में लौंग के लगाने से अनेक प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं। वे इसमें सिर-दर्दनाशक गुण भी मानते हैं। साथ ही दाँतों के लिए भी अत्यधिक उपयोगी मानते हैं। लौंग को ही देवपुष्प भी कहते हैं। तंत्र-शास्त्र में इसका अत्यधिक महत्व माना गया है। सम्पूर्ण पूजन-सामग्री के होते हुए भी, यदि लौंग का अभाव हो, तो वे पूजन नहीं कर सकते। और यदि लौंग रहे, तो उन्हे किसी अन्य वस्तु का अभाव न मालूम होगा। एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति से लौंग गरम, उत्तेजक और उदरशूल-नाशक मानी गई है। उनके यहाँ भी इसका विशेष रूप से औषधियों में प्रयोग होता है। अजीर्ण और शूलादिक व्याधियो में अन्य औषधियों के साथ इसका प्रयोग करते हैं।

लवंगं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं कफपित्तास्रनाशकृत् ॥
तृष्णां छर्दिं तथाध्मानं शूलमाशु विनाशयेत्।
कासं श्वासं हिक्का च क्षय क्षपयति ध्रुवम् ॥—भा० प्र०

लौंग—कड़वी, तीखी, हलकी, नेत्रों को हितकारी, शीतल, दीपक, पाचक, रुचिकारक तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, वमन, आध्मान, शूल, कास, श्वास, हिचकी और क्षयनाशक है।

देवपुष्पोद्भवं तैलं अग्निकृद्वातनाशनम् ।
दन्तवेष्टकफार्तिघ्न गर्भिण्या वमनापहम् ॥—भा० स०

लौंग का तेल—अग्निदीपक तथा वात, दन्तपीड़ा, कफ और गर्भिणियों के वमन का नाशक है ।

कफ-विकार में—लौंग का काढा पीना चाहिए ।

वातरोग में—लौंग को घिसकर अंजन करना चाहिए । यह आधा शीशी, मूर्च्छा, जुकाम आदि में भी लाभकारी है ।

श्वासरोग में—ठिकरे को आग में तपाकर लाल करके एक किसी मिट्टी के पात्र मे उसे रखकर उस तप्त ठिकरे पर सात लौंग रख दे । जब लौंग भुन जायँ तब आधी छटाँक गुरिच का रस उसी में छोड़ दें । उसके छौंक जाने पर लौंग और वह रस एक साथ घोटकर पीना चाहिए । प्रतिदिन प्रात काल ।

दन्तरोग में—लौंग का तेल अथवा अर्क रुई के फाहा से लगाना चाहिए ।

अजीर्ण में—लौंग का अष्टमाश काढा पीना चाहिए । इससे अग्निमाद्य और विपूचिका रोग में भी लाभ होता है ।

कास-श्वास में—लौंग, कालीमिर्च, वहेड़ा का छिलका एक-एक तोला, कत्था तीन तोले, ववूल के अन्तर्छाल के काढे के साथ पीसकर तीन-तीन माशे की गोली वनाकर प्रतिदिन दिन में तीन वार मुख में रखकर चूसना चाहिए ।

खाँसी में—लौंग, जायफल और छोटी पीपर छ-छ माशे,

कालीमिर्च दो तोले, सोंठ सोलह तोले और मिश्री बीस तोले, सबका चूर्ण बनाकर एक माशा से पाँच माशे तक शक्त्यानुसार गरम अथवा शीतल जल के साथ सेवन करना चाहिए। यह श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, अग्निमांद्य एवं अतीसार-संग्रहणी में भी लाभदायक है।

तृषा में—लौंग और नागरमोथा छ-छ. माशे, जल के साथ थोड़ा पकाकर वही जल शीतल करके पीना चाहिए।

प्रमेह में—लौंग, जायफल, छोटी पीपर एक-एक तोला; बहेड़ा का छिलका तीन तोले; कालीमिर्च दो तोले; सोंठ सोलह तोले और मिश्री चौविस तोले, सबका चूर्ण बनाकर छ माशे तक गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए। इससे श्वास, ज्वर, अरुचि, संग्रहणी और गुल्म मे भी लाभ होता है।

वमन में—गर्भवती स्त्रियो को जो वमन होता है, उसे रोकने के लिए लौंग पानी में उबाल कर वही पानी पिलाना चाहिए।

विष में—वर्र, भौंरा, मधुमक्खी आदि के काटने पर लौंग जल के साथ पीस कर लगाना चाहिए। फोड़े पर भी लौंग घिस-कर लगाने से विशेष लाभ होता है।

विलनी में—लौंग और छोटी हर्र गरम जल के साथ घिस-कर लगाना चाहिए। इससे वह या तो बैठ जाती है। अथवा पक-कर फूट जाती है।

केसर

स० केशर, हि० केसर, व० म० केशर, गु० केसर, क० कुंकुम, तै० कुंकुमपुत्रु, अ० जाफरान, फा० करकीमास, अँ० सेफ्रन—Saffron और लै० क्रोकस साटिवस—Crocus Sativus.

केसर का पौधा छोटा होता है। इसका कांदा दो-दो तीन तीन हाथ के फासले पर बोया जाता है। बोने के दो-तीन माह बाद इसका पौधा उगता है, और तब उसमें फूल आते हैं। इसका फूल तीन पंखुरियोंवाला होता है। उसके भीतर पतले-पतले तंतु रहते हैं। यही ततु-समूह केसर कहा जाता है। इसके फूल की पखुरियाँ नीले रग की होती हैं। यदि ततु-समूह लाल रंग का और लम्बा हो तो उत्तम केसर समझना चाहिए। केसर तीन प्रकार की होती है। भिन्न-भिन्न देशों में उत्पन्न होने के कारण भिन्न-भिन्न रग और गुणवाली होती है। यह काश्मीर, ईरान, बुखारा, नैपाल तथा योरप के अनेक स्थानों में होती है। काश्मीर में उत्पन्न होनेवाली केसर के ततु बहुत ही छोटे-छोटे, बाल के समान पतले और रक्तिमायुक्त होते हैं। इसमें से कमल के समान गंध निकलती है। यह सब प्रकार की केसरों में उत्तम है। बुखारावाली केसर पीले रंग की होती है। इसमें से केतकी-जैसी सुगन्ध निकलती है। इसके भी तंतु सूक्ष्म ही होते हैं। यह मध्यम श्रेणी की केसर मानी जाती है।

ईरानवाली केसर मधुगंधयुक्त और अधिक पीतवर्ण होती है। किन्तु इसके तंतु औरों की अपेक्षा कुछ दृढ़ होते हैं। यह निम्नश्रेणी की केसर मानी गई है।

आजकल के व्यापारी सज्जन केसर में कुसुम-फूल के तंतुओं का संमिश्रण कर बेचते हैं। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत खराब है। क्योंकि आयुर्वेद में केसर के अभाव मे तज और जावित्री को ग्राह्य माना है। नैपाल और योरोपीय केसर भी निम्न-श्रेणी की मानी गई है। प्राचीन निघंटु-ग्रंथों में नैपाल और योरो-पीय केसर का उल्लेख नही पाया जाता। बल्कि नैपाल की केसर का तो वर्णन कहीं-कहीं अर्वाचीन ग्रंथों में मिल भी जाता है, परन्तु योरोपीय केसर का कहीं नहीं मिलता। एक वर्ष से अधिक समय की केसर गुण-हीन हो जाती है। अतएव एक वर्ष के भीतर की केसर लेनी चाहिए। केसर विशेषकर रंग, औषधि और रागोत्पत्ति के काम आती है।

साहित्यिक तथा कामशास्त्र की दृष्टि से भी केसर अत्युपयोगी वस्तु प्रतीत होती है। साहित्य मे कविलोग नायिका-भेदादिकों में कहीं-कहीं इसका वर्णन करते पाए जाते हैं। कामशास्त्र में भी रागोद्दीपन के लिए केसर एक उत्तम वस्तु मानी गई है। वैद्यक की दृष्टि से तो उपयोगी है ही। वास्तव में श्री खण्ड, केसर और मृगमद का लेपन पीनपयोधरा, षोड़शी, श्यामा का आलिंगन स्वर्ग-सुख की कल्पना से भी अधिक आनन्ददायक है। कामशास्त्र में

कम-से-कम शताधिक बार तो केसर का उपयोग भिन्न-भिन्न रागो-द्दीपन के लिए बतलाया गया है। कहा है—

मत्तेनकुम्भपरिणाहिनि कुंकुमार्द्रा
कान्तापयोधर तटे रसस्वेद खिन्न।
वक्षोनिधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्य क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्र॰॥

जो पुरुष रति-श्रम से श्रमित होकर मतवाले हाथी के कुम्भों के समान विस्तीर्ण और केसर से भीगे हुए स्तनों पर अपनी छाती रखकर कान्ता के भुजरूपी पंजर के बीच पड़ा हुआ एक क्षण ही सोकर रात व्यतीत करे, तो वह धन्य है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा की अपेक्षा यूनानी चिकित्सा में इसका अधिक उपयोग किया जाता है। तैलादिकों में तो यह काम आती ही है। मिठाई, श्रीखण्ड आदि खाद्य वस्तुओं को सुन्दर एवं सुस्वादु बनाने के लिए इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। देव-भक्त जनता इसका उपयोग उनका वस्त्र रँगने तथा चन्दनादिकों में मिलाकर सफल अर्चना के उपयोग में लाती है। ईरान में भी इसका अधिक और अनेक प्रकार से व्यवहार किया जाता है। वहाँ की स्त्रियाँ सुखपूर्वक प्रसव होने के लिए तथा प्रसवानन्तर की पीड़ा की शान्ति के लिए केसर अथवा उसकी गोली बनाकर अंचल के छोर में बाँध लेती हैं। इससे शीघ्र प्रसव हो जाता है। होमियोपैथी चिकित्सा में भी उसी पद्धति के अनुसार बने हुए इसके सत का प्रयोग स्त्रियों के रज-सम्बन्धी रोग में किया जाता है।

जेरानियम	११८	एनीमोन फोरोनेरिया	१२१
जेसनेरा ..	११९	एनीमोन जैपोनिका ...	१२२
हैम्रोथैमनस ..	११९	एचिमेनिस ..	१२२
होया	११९	अमेरिलिस .	१२२
होया कारनोसा	११९	सिपुरा नौरथियाना ...	१२२
होया वेला	११९	सिपुरा ह्यूमिलिस ...	१२२
होया	११९	आइरिस चिनेसिस ..	१२२
हाइड्रैंगी	११९	आइग्रिजया फ्लेक्सुओसा	१२३
हाइड्रैंजी जॉपोनिका	१२०	ग्लैडीओलस ..	१२३
जट्रोफा पानडूरीफोलिया	१२०	स्पैरैक्सिस लाइनियेटा	१२३
लेमोनिया	१२०	स्पैरैक्सिस ग्रैन्डीफ्लोरा	१२३
ओली	१२०	स्पैरैक्सिस ट्राइकलर	१२३
औरचिड	१२०	नारसिसस जॉनक्लि	१२३
पेनटास	१२०	क्राइनम ...	१२३
रोनडेलेशाया	१२०	हिपीस्ट्रम	१२४
सलविया	१२१	हायासिन्थ	१२४
सोलेनम ..	१२१	फ्रिकिया-सबकौरडाटा	१२४
लौमा .	१२१	लिलियम लौंगीफ्लोरम	१२४
ानेमा	१२१	रिचार्डिया इथियोपिका	१२४
मिया	१२१	जेसनेरा	१२४
ना	१२१	ग्लौक्सीनीया	१२५

कुङ्कुमं सुरभि तिक्तकटूष्ण कासवातकफकण्ठरुजघ्नम् ।
मूर्द्धशूलविषदोषनाशनं रोचनं च तनुकान्तिकारकम् ॥—रा०नि०

केसर—सुगंधित, तिक्त, कटु, उष्ण, रोचक, कान्तिवर्द्धक तथा कास, वात, कफ, कण्ठरोग, मस्तक शूल और विषदोशनाशक है।

रक्तपित्त में—बकरी के एक छटाँक दूध में अपनी शक्ति के अनुसार चार रत्ती तक केसर पीसकर पीना तथा बकरी का दूध और चावल खाना चाहिए।

रक्तस्राव में—शरीर से अधिक रक्त निकल जाने पर चार रत्ती तक केसर शहद के साथ घोटकर चाटना चाहिए।

पीनसरोग में—केसर घी के साथ घोटकर प्रतिदिन प्रातःकाल नास लेनी चाहिए।

सिर-दर्द में—यदि आधाशीशी का दर्द हो तो केसर घी के साथ घोटकर प्रात काल नस्य लेनी चाहिए।

विष में—पारा का विष नष्ट करने के लिए नीबू के छ माशे रस में चार रत्ती केसर पीसकर पीना चाहिए।

पाण्डुरोग में—केसर चार रत्ती, पीपर एक माशा, मुलेठी और निशोथ एक-एक तोला सोलहगुना जल के साथ पकाकर अष्टमांश शेष रह जाने पर पीना चाहिए। मिट्टी खाने से जो पाण्डु-रोग होता है, उसमें इस क्वाथ का प्रयोग करने से खाई हुई मिट्टी निकल कर रोग नष्ट हो जाता है।

शिरोरोग में—केसर चार रत्ती, बादाम एक तोला, गाय के घी के साथ घोटकर नास लेना तथा सिरपर लेप करना चाहिए।

मूत्रविकार में—एक पाव जल के साथ मिट्टी के पात्र में एक माशा केसर रात के समय भिगा दिया जाय। प्रातःकाल उसे छानकर और एक तोला शहद मिलाकर पीना चाहिए।

धातुरोग में—एक तोला घी के साथ दो रत्ती अथवा चार रत्ती केसर घोटकर तीन दिन प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। किन्तु यह पैत्तिक प्रमेह में हानिकारक है।

कृमिरोग में—केसर और कपूर चार-चार रत्ती एक छटाँक दूध के साथ पीसकर पीना चाहिए।

उदरशूल में—यदि गर्भिणी को रक्तस्राव अधिक होता हो अथवा पेड़ू में पीड़ा होती हो तो गाय का मक्खन एक तोला एक माशा केसर मिलाकर खाना चाहिए।

प्रियंगु

स० हि० व० प्रियगु, म० गह्वला, गु० घऊंला, क० नेर्पिलगु, ता० प्रियंगु, तै० प्रकणपुचेट्टु और लै० प्रुनस मबालिब—Prunus mabaleb.

प्रियंगु का पेड अधिक बड़ा नहीं होता। इसके वृक्ष उत्तर हिन्दुस्तान में विशेष पाए जाते हैं। इसके पुष्प का उपयोग तैलादिक वस्तुओं को सुगन्धित करने के लिए अन्य सुगन्धित पदार्थों के साथ होता है, और यों भी औषध के काम आता है। इसकी सुगन्ध अधिक तीव्र नहीं होती। तथापि मध्यमश्रेणी की और अच्छी होती

है। फूल प्रियंगु, गन्ध प्रियंगु और लता प्रियंगु भेद से यह चार प्रकार का है और प्राय चारों समान गुणवाले भी हैं।

प्रियंगुः शीतला तिक्ता तुवरानिलपित्तहृत्।
रक्तातिसारदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा ॥
गुल्मतृड्विषमेहघ्नी तद्वद्गन्धप्रियंगुका।
तत्फलं मधुरं रूक्षं कषाय शीतलं गुरु॥
विबन्धाध्मानबलकृत्संग्राहीकफपित्तजित्। —भा० प्र०

प्रियंगु—शीतल, तिक्त, कषैला तथा वात, पित्त, रक्तातीसार, दुर्गन्धि, पसीना, दाह, ज्वर, गुल्म, तृषा, विष और प्रमेहनाशक है। इसी के समान गन्ध प्रियंगु का भी गुण है। **प्रियंगु का फल**—मधुर, रूक्ष, कषैला, शीतल, भारी तथा विबन्ध, आध्मान और बलकारक एवं ग्राही तथा कफ-पित्त नाशक है।

रक्तस्राव में—यदि गर्भिणी को रक्तस्राव होता हो तो फूल प्रियंगु, कमलगट्टा और गूलर समानभाग दूध और जल के साथ क्षीरपाक करके पिलाना चाहिए। चावल और दूध खाने के लिए देना चाहिए।

पित्त-विकार में—फूल प्रियंगु और और मिश्री का समभाग चूर्ण शीतल जल के साथ सेवन करना चाहिए।

प्रमेह में—सतावर और फूल प्रियगु तथा मिश्री समानभाग एक तोला प्रतिदिन प्रात.काल दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

अनार

सं० दाड़िम, हि० अनार, बं० दाड़िम, म० डालिंब, गु० दाड़यम, क० दालिंब, ता० मादलइ चेंडेड्डि, तै० डानिम्बचेट्टु, अ० रुमानहामीज, फा० अनार, अँ० पम्ग्रानेट—Pumgranite और लै० पुनिका ग्रानेटम—Punica Granatum.

अनार का पुष्प रक्तवर्ण का देखने में बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। यह खिलाने और लेप करने के काम आता है। अनार का वृक्ष इस देश में सर्वत्र पाया जाता है। अरब और काबुल में उत्पन्न होनेवाले अनार का बीज अत्यन्त कोमल होता है। इसीलिए वहाँ पर उसे बेदाना भी कहते हैं। अनार का पेड़ दस से पंद्रह फिट ऊँचा होता है। एक प्रकार के अनार में केवल पुष्पही लगता है। उसे गुलनार कहते हैं। अनार के पुष्प का सम्पूर्ण अंग रक्तवर्ण नहीं होता। कहीं-कहीं किंचित पीलापन लिए भी पाया जाता है। अनार के फूल का उपयोग औषध में ही होता है।

तत्पुष्पं च पुनर्ज्ञेय नासासृग्गतिनाशनात्।—शा० नि०

अनार का फूल—नासारोग और असृग्दर व्याधि नाशक है।

अतीसार में—अनार के फूल का रस दो तोले, जायफल चार रत्ती, सोंठ दो रत्ती और लौंग भूनकर दो; सब एक साथ घोटकर और एक माशा शहद मिलाकर प्रतिदिन दोनों समय सेवन करना चाहिए।

रक्तस्राव में—यदि नाक से रक्त निकलता हो। अर्थात नकसीर मे अनार का फूल और दूब का रस नाक में छोड़ना चाहिए। तथा उसकी सीठी गुलाबजल के साथ पीसकर तालू पर रखनी चाहिए।

पित्तविकार में—अनार के फूल का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

रक्तपित्त में—यदि मुँह से रक्त निकलता हो तो अनार का फूल और सफेद दूब का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

मुँह के छालों पर—अनार का फूल मुख में रखकर उसका रस चूसना और थूकना चाहिए।

रक्तप्रदर में—अनार की कली, खून खराबा, नागकेसर और पीपर की लाह सब दूध के साथ पीस-छानकर और मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

आँख आने पर—अनार की कली का रस आँखों में छोड़ना चाहिए। यह पित्तज अभिष्यन्दि के लिए विशेष उपयोगी है।

तिल

स० तिल, हि० तिल, ब० तिलगाछ, म० तील, गु० तल, क० एलु, ता० वाल्लेनेय, तै० तोवुल्ल, अ० सिमसिम, फा० कुजद, अँ० सिसेमस् निगर सीड्स—Sisamum Niger Seeds और लै० सिसेमम् इण्डिकम्- Sisamum Indicum.

इसका वृक्ष प्राय' दो हाथ ऊँचा होता है। जिस समय यह मुलायम रहता है, उस समय लोग इसका शाक बनाकर खाते हैं। इसकी पत्तियाँ आठ-दस अँगुल लम्बी और तीन-चार अँगुल चौड़ी तथा कुछ टेढी होती हैं। इसके फूल गोल-गोल, थोड़े गहरे, बाहर सफेद और भीतर बैंगनी रंग के होते हैं। उनमे से तिल के लम्बे-लम्बे कोष निकलते हैं।

हिन्दुओं में तिल का व्यवहार मनुष्य की उत्तर क्रिया तथा श्राद्धादिकों में विशेष होता है। अनेक प्रकार से यह औषध के काम आती है। इसके तेल का उपयोग भारत भर में विशेषता के साथ होता है। बहुमूत्र के लिए यह बड़ी उत्तम वस्तु सिद्ध हुई है।

पिण्याकपुष्प तु कषाय मधुर गुरु।—हा० स०

तिल का फूल—कपैला, मधुर और भारी है।

पथरी में—तिल के पुष्प की राख दो माशे, शहद एक तोला और गाय का दूध एक पाव एक साथ मिलाकर पीना चाहिए।

प्रमेह में—तिल का पचास फूल शाम के समय आधसेर जल के साथ मिट्टी के बरतन में भिगो दें। प्रात काल उसे मलकर छान लें और थोड़ी शक्कर अथवा मिश्री मिलाकर पी जायँ। इसी प्रकार दोनों समय सात दिनों तक पीना चाहिए। यह प्रयोग मूत्र-कृच्छ्र और प्रदररोग में भी किया जाता है।

गेंदा

हि० गेंदा, गु० गेंदा नो फूल और अँ० केलेन्डुला—Calendula.

गेंदा का फूल लाल और पीला दो प्रकार का होता है। लाल रंग का फूल बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। दूर से देखने पर मालूम होता है कि गाढ़े लाल रंग का मखमल रखा हो, किन्तु लाल रंग का फूल छोटा होता है, और पीले रंग का बड़ा होता है। औषध इत्यादि के उपयोग में पीले रंग का ही विशेष व्यवहृत होता है। पीले फूल वाले, बड़े गेंदा को हजारा गेंदा कहते हैं। गेंदा का पेड़ ढ़ाई-तीन फिट ऊँचा होता है। उसकी पत्ती लम्बी, किन्तु कई स्थानों पर कटी हुई होती है। इसका फूल—छतनार और अनेक पतली-पतली पीली और लाल पँखुरियों की समष्टि होता है। उन पँखुरियों का निचला हिस्सा डोरे के समान होता है, और वह हरे रंग के गोलाकार में बँधा रहता है। इसका फूल प्राय सभी मौसम में मिलता है; किन्तु जाड़े में विशेष होता है। इसकी पत्ती का विशेष उपयोग होता है। होमियोपैथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में इसका विशेष व्यवहार होता है। गेंदा में एक प्रकार की दबी हुई; किन्तु बड़ी उग्र गन्ध होती है। इसकी सुगन्ध से अनेक प्रकार के विषैले कीटाणु भी भाग जाते हैं। घाव में इसकी पत्ती रखने से कीड़े नहीं पड़ते और पड़े हुए कीड़े भी भाग खड़े होते

होते हैं। परन्तु वे मुलायम होते हैं। इसकी वालें ही इसका पुष्प हैं और उनमें से बड़ी सुन्दर सुगन्ध निकलती है। मुसलमान लोग इसका बड़ा उपयोग करते हैं। उन वालों में से काले रंग के बीज निकलते हैं। इसकी गन्ध के कारण ही सर्प इसके पास नहीं जाता।

मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः।
वृश्चिकादिविषश्लेष्मवातकुष्ठकृमि प्रणुत्॥
कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः।—शा० नि०

मरुआ—अग्निप्रद, हृदय को हितकारी, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तल, हलका तथा विच्छू आदि का विष, कफ, वात, कुष्ठ और कृमिनाशक है। पाक और रस में कटु, रुचिकारक, तिक्त, रूखा और सुगन्धित है।

सर्प-विष पर—मरुआ के पत्ते का रस पिलाना चाहिए।

दाह पर—मरुआ का बीया भिगोकर पीस लें और गाय का दूध तथा मिश्री मिला कर पीना चाहिए।

बहरेपन में—मरुआ के पत्ते का रस गरम करके कान में छोड़ना चाहिए।

पीनस में—मरुआ के पत्ते के रस में कपूर घिसकर नाक में छोड़ना चाहिए।

फोड़े पर—यदि कीड़े पड़ गए हों, तो मरुआ और धतूरे के पत्ते का रस छोड़ना चाहिए।

कृमिरोग में—मरुआ और पुदीना की पत्ती का रस सम-

भाग पीना चाहिए।

गरमी में—मरुआ का एक तोला बीज, आधसेर शीतल जल के साथ भिगो दें और प्रात काल एक पाव गाय का कच्चा दूध मिला कर पीना चाहिए। इसी प्रकार प्रात'काल भिगो दिया जाय और सायंकाल दिया जाय। सात दिनों तक दोनो समय देना चाहिए।

पेट-दर्द में—मरुआ के पत्ते का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

आग से जल जाने पर—मरुआ के पत्ते का रस लगाना चाहिए।

दौना

स० दमनक, हि० दौना, ब० दोन, म० दवणा, गु० डमरो, क० दवना, अँ० वर्मउड—Worm Wood और लै० आर्टिमेफिया इन्डिका—Artemefia indica.

दौना को ही कुछ लोग नागदमन और सुदर्शन भी कहते हैं। इसका क्षुप दो-तीन फिट ऊँचा होता है। इसके पत्ते गाजर की पत्ती के समान होते हैं। किन्तु उससे कुछ झीने होते हैं। इसकी गन्ध बहुत तीव्र होती है। इसकी सुगन्ध दूर से ही प्रिय प्रतीत होती है। इस पर किंचित पीले, किंचित लाल और छतनार फूल लगते हैं। फूलों से भी पौधे-जैसी ही गन्ध निकलती है। इसके पत्तों पर बहुत सूक्ष्म रोओं-जैसा होता है। सुगन्धित पदार्थों में

शीतवीर्य तथा वात, पित्त, ज्वर, दाह, भ्रम, पिशाचबाधा, रक्तातीसार, उन्माद, मद, कास, श्वास, कफ, कुष्ठ, कृमि और क्षयनाशक है। शेष गुण श्वेतापराजिता के समान ही हैं।

विरेचन के लिए—श्वेतापराजिता का बीज घी के साथ तलकर और चूर्ण बनाकर एक तोला तक गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए।

कुष्ठ पर—श्वेतापराजिता की जड़ के साथ घिसकर एक मास तक प्रति दिन कई बार लेप करने से नष्ट हो जाता है।

शिरोरोग में—श्वेतापराजिता की जड़ जल के साथ घिस कर नस्य लेनी चाहिए।

हरताल के विष पर—श्वेतापराजिता की पत्ती का रस पीना चाहिए।

कफ में—श्वेतापराजिता की जड़ का रस अथवा काढ़ा दो तोला, गाय का समभाग दूध मिलाकर पीना चाहिए।

ज्वर में—अपराजिता के रस की नस्य लेनी चाहिए।

शोफोदर पर—अपराजिता की लता कमर में बाँधनी चाहिए।

गर्भस्थापन के लिए—यदि किसी कारणवश गर्भस्राव या पात होने की सम्भावना मालूम पड़े, तो श्वेतापराजिता की जड़ दूध के साथ पीसकर पिलानी चाहिए। इससे वह रुक जायगा।

गर्भस्थिति के लिए—चौथे दिन स्नान करके सर्वप्रथम

साइक्लामेन ... १२५
डहलिया वैरियाबिलिस १२५
ऑक्जेलिस ... १२५
अकेसिया फारनेसियाना १२५
अग्लेया ओडाराटा .. १२५
आरटाबोट्रिस औरडोरेटि-
सीमस ... १२६
आरटेमिसिया लैटीफोलिया १२६
आइक्जोरा ... १२६
सीसलपिनीया कोरि-
आरिया ... १२६
साइट्रस ... १२६
चिमोनैनथस फ्रैगरेन्स १२६
क्लेरोडेन्ड्रन फ्रैग्रैन्स ... १२७
हेलियोट्रोपियम ... १२७
फ्रैन्सिसिया लैटीफोलिया १२७
मिलिङ्गटोनिया ... १२७
हेडीचियम ... १२८
हेडीचियम क्राइसोल्यूकम १२८
यूपैटोरियम ओडोटेरम १२८
हैमिलटोनिया अजोरिया १२८
लोनीसेरा जैपोनिका १२८
लोनीसेरा सेम्पर्वीरेन्स १२९
डलबर्जिया सीसो ... १२९
मैगनोलिया ग्रैण्डीफ्लोरा १२९
फोटिनीया डुबिया .. १२९
स्टाइलो कोराइन वेवेरी १२९
पोर्ट लैण्डिया ग्रैण्डी-
फ्लोरा ... १२९
रिनकोसपरमम जैसमीन्यो-
डिस ... १३०
प्लुमेरिया एक्युमिनाटा १३०
परगुलेरिया ओडारेटीसीमा १३०
स्वीट पी ... १३०

शुद्ध मन से पति का दर्शन करके श्वेतापराजिता का ग्यारह फूल खाना चहिए। उस दिन हलका भोजन करना चाहिए और अनेक प्रकार से चित्त को शान्त, प्रसन्न और स्थिर रखना चाहिए तथा रात्रि के समय पुनः ग्यारह पुष्प खाकर तथा उसीके पुष्प के रस की नस्य लेकर रति-क्रीड़ा में प्रवृत्त होना चाहिए। इससे अवश्य गर्भस्थिति होती है।

उदररोग में—श्वेतापराजिता के बीज का तीन माशे चूर्ण गरमजल के साथ सेवन करना चाहिए।

हिंगोट

स० इंगुदी, हि० हिंगोट, व० इङ्गोट, म० हिंगणबेट, गु० इंगोरियो, तै० गरा, अ० हिलेलजे, अँ० डेलिल—Delil और लै० वेलेनाइटीस राक्सबुर्धि—Balanites Roxburdhi.

दक्षिण में हिंगोट के झाड़ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है। इसके ऊपर काँटे होते हैं। इसके फल को हिंगोट कहते हैं। इसके फूल बड़े होते हैं। पुष्प रंग-भेद से यह कई प्रकार का होता है।

> इंगुदीनामको वृक्षो मदगंधि कटुर्लघु।
> तिक्तश्चोष्ण फेनिलश्च प्रोक्तश्चैव रसायन ॥
> कृमीन्वात विष शूल श्वित्रं कुष्ठ व्रणं कफम्।
> ग्रहपीडा भूतबाधां नाशयेदिति कीर्तितम् ॥

अस्य पुष्पन्तु मधुरं स्निग्ध चोष्णं च तिक्तकम् ।
वातं कफं नाशयतीत्येवमाचार्यभाषितम् ।।—नि० र०

हिंगोट का वृक्ष—मदगन्धयुक्त, कड़वा, हलका, तीता, गरम, फेनिल, रसायन तथा कृमि, वात, विष, शूल, श्वित्रकुष्ट, कुष्ट, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा और भूतबाधा नाशक है। हिंगोट का पुष्प—मधुर, स्निग्ध, उष्ण, तीता तथा वात और कफ नाशक है।

फोड़ा पर—हिंगोट के जड़ की छाल और हींग पीसकर लगानी चाहिए। बलतोड़ की यह उत्तम औषधि है।

मुहाँसे पर—हिंगोट का बीज शीतल जल के साथ पीस-कर मुख पर लेप करना चाहिए।

स्तन-रोग पर—हिंगोट का पुष्प पानी के साथ पीसकर और गरम करके लेप करना तथा उस पर धतूरा का पत्ता सेंककर बाँधना चाहिए।

नेत्र-रोग में—हिंगोट का फल घिसकर अंजन करना चाहिए।

विष पर—यदि कुत्ते ने काट लिया हो, तो हिंगोट की छाल मट्ठा के साथ पीस-छानकर पिलानी चाहिए।

कर्णमूल पर—हिंगोट की छाल, पुष्प और हल्दी, इंद्रायण, सेंधानमक और देवदारु मदार के दूध के साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

हैजा पर—हिंगोट का पुष्प अथवा छाल मट्ठा के साथ पीसकर पीना चाहिए।

वातविकार में--हिंगोट का बीज पीसकर उसकी गोली बनाकर खानी चाहिए।

पुन्नाग

स० हि० गु० पुन्नाग, व० पुन्नागाछ, म० उंडली, क० सुर होन्तेयभेद, तै० सुरपोन्नचेट्टु और लै० ओक्रोकार्पस सोंगिफोलियुम्—Ochrocarpus-songifolium.

पुन्नाग की झाड़ कोंकण प्रान्त में अधिकता से पाई जाती है। यह पुन्नाग और सुरपुन्नाग भेद से दो प्रकार का होता है। पुन्नाग की अपेक्षा सुरपुन्नाग विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। कुछ लोग इसे भी नागकेशर मानते हैं। इसका फल वृहद्दन्ती के समान होता है। इसके फल से तेल निकाला जाता है। इसका पत्ता कुछ मोटा होता है। पत्ते का उपरी भाग चिकना और साफ होता है। इसके पत्ते की पत्तल बनाई जाती है। इसका फूल सफेद, मीठा और सुवासित होता है। इसका फल सुपारी-जैसा आकार वाला होता है। फल के ऊपर का जो कठोर छिलका होता है, उसीसे तेल निकलता है। यह तेल जलाने के काम आता है और रेंड़ी के तेल की अपेक्षा अच्छा होता है।

पुन्नागो मधुरः शीतः सुगन्धिः पित्तनाशकृत्।
देवप्रसादजनको रक्तरुग्रक्तपित्तजित्॥

कफं पित्तं भूतबाधा नाशयेदिति कीर्त्तितम् ।

पुष्प वृष्यं वातशूलकफदोषजयत्यलम् ॥

नमेरुस्तिक्तपुन्नागादधिकश्चगुणे स्मृत. । —नि० र०

पुन्नाग—मधुर, शीतल, सुगन्धित, पित्तनाशक, देवताओं को प्रसन्न करने वाला तथा रक्तदोष, रक्तपित्त, कफ, पित्त और भूतबाधानाशक है। पुन्नाग का पुष्प—वृष्य तथा वातशूल और कफदोष नाशक है। सह-पुन्नाग—कड़वा तथा पुन्नाग की अपेक्षा अधिक गुणद है।

मोच पर—हाथ-पैर में मोच आ जाने पर पुन्नाग की छाल जल के साथ बारीक पीस कर और गरम करके लगानी चाहिए।

खुजली पर—पुन्नाग का तेल लगाना चाहिए।

अण्डवृद्धि पर—पुन्नाग की अतरछाल बारीक पीस कर और गरम करके लगानी चाहिए।

अर्श पर—तम्बाकू की तरह इसका फूल चिलम में भर कर पीना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक इसका उपयोग करने से पुराना-से-पुराना अर्श भी अच्छा हो जाता है।

कुछ प्रचलित पुष्प

सुरपर्ण

यह सेमल की जाति का ही एक पौधा है। इसके पत्ते सेमल के पत्ते से मिलते-जुलते होते हैं। इसका पौधा प्रायः दो हाथ ऊँचा होता है। इसका पुष्प सफेद और पीले रंग का होता है। उसमें से बहुत ही मन्द गन्ध आती है। यह स्वाद में कड़वा, तीखा; किन्तु पाचक होता है।

कर्णरोग में—सुरपर्ण के पत्ते का रस छोड़ना चाहिए।

अतीसार में—बालको को अधिक दस्त आते हों तो सुरपर्ण का पुष्प गाय के ताजे दूध के साथ पीसकर पिलाना चाहिए।

कृमिरोग में—बालक के पेट में यदि कीड़े हों तो सुरपर्ण की जड़ का चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिए।

श्वासरोग में—सुरपर्ण के फूल का रस पीना चाहिए।

वातविकार में—सुरपर्ण के पत्ते अथवा फूल का रस एक तोला, कालीमिर्च का एक माशा चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

गुलाबाशी

इसका पौधा छोटा होता है। पत्ते पत्ते मुलायम, किन्तु लम्बे होते हैं। पुष्प-रंग-भेद से इसकी अनेक जातियाँ हैं। इसमें सफेद, पीला और लाल रंग का पुष्प आता है। औषध में सफेद फूलवाली

गुलाबासी काम आती है। यह वातल, शीतल और गलगंड रोग नाशक है। अर्श में भी उपयोगी सिद्ध हुई है।

फोड़े पर—गुलाबासी के पत्ते पर घी चुपड़ कर और सेंक कर बाँधना चाहिए। अथवा इसकी जड़ पीसकर पुल्टिस की भाँति बाँधनी चाहिए।

धातु-विकार में—सफेद फूल वाली गुलाबासी का कंद घी के साथ भूनकर बादाम, पिस्ता और मिश्री मिलाकर खाना चाहिए।

वीर्यस्राव पर—सफेद गुलाबासी का कन्द दूध-घी के साथ पीसकर और मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। प्रतिदिन सात दिनों तक।

केशनाश के लिए—गुलाबासी का कन्द पानी के साथ घिस कर लगाने से रोम गिर जाते हैं।

शिरियारी

इसका पौधा छोटा होता है। यह बोया अथवा लगाया नहीं जाता, बल्कि स्वयं उगता है। यह अधिकतर चौमासे में होता है। इसके सिरे पर सफेद रंग के झुमके लगते हैं। उन्हीं झुमकों में इसका बीज रहता है। इसके फूल लाल रंग के होते हैं। यह शीतल है। यह विशेष कर दाह, मूत्रविकार, तृषा और अरुचि-नाशक है।

मूत्रविकार में—पथरी और मूत्राघात पर शिरियारी का बीज एक माशा और मिश्री एक माशा शीतल जल के साथ देना चाहिए।

नशा में—भाँग, गाँजा आदि के नशा पर शिरियारी की जड़ शीतल जल के साथ पीसकर पीनी चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—शिरियारी का पुष्प मट्ठा के साथ पीसकर पीना चाहिए।

कलाघास

कलाघास भारत के प्राय. सम्पूर्ण प्रान्तो में पाई जाती है। इसके फूल बहुत ही सुन्दर और मखमल के समान मुलायम होते हैं। इसके बीज को राजगिरा कहते हैं। यह काला और सफेद दो रंग का होता है। व्रती लोग इसकी खीर बनाकर खाते हैं। इसकी खेती अलग नही होती। अन्य अन्नों के साथ इसे भी बोते हैं। यह शीतल तथा जड़ है।

फोड़े पर—कलाघास के पुष्प की डंठी पीसकर लगानी चाहिए।

निद्रालाने के लिए—राजगिरा की खीर खानी चाहिए।

रक्तपित्त में—कलाघास के पुष्पों का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

राजहंस

इसका क्षुप बहुत छोटा होता है और प्राय: छतनार-सा जमीन के बराबर होता है। यह परती जमीन और पुरानी दीवारों पर विशेष होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और आपस में जुड़ी हुई होती हैं। इस पर लाल रंग के फूल आते हैं। उस पर से एक बारीक सींक-सी निकलती है। उसी सींक में इसके महीन बीज रहते हैं। मलने से बीज निकल आते हैं।

श्वास रोग में—राजहंस की पत्ती का रस पीना चाहिए।

विष पर—हरताल का विष शान्त करने लिए राजहंस के फूल का रस पीना चाहिए।

दूध का विकार शान्त करने के लिए—राजहंस की पत्ती सुखाकर और दूध के साथ उसे पकाकर तथा मिश्री मिलाकर प्रतिदिन एक सप्ताह तक खिलानी चाहिए। इस प्रकार से माता के दूध का विकार भी शान्त हो जाता है और दूध भी बढ़ जाता है।

गुलछड़ी

इसका पौधा छोटा होता है। इसमें कन्द होती है। और उसी से इसकी उत्पत्ति होती है। इसके पत्ते प्याज के पत्ते के समान होते हैं। उसके बीच में दो-तीन हाथ का डंठल होता है। उस पर बौर आता है। उस बौर में से फूल निकलते हैं। इसकी फली

लम्बी होती है। इसका फूल मधुर सुवासित होता है। यह स्निग्ध और हलका है।

शरीर के छालों पर—वालकों के शरीर पर यदि छाले पड़ गए हों तो गुलछड़ी की जड़ और हल्दी मक्खन के साथ घिस कर लगानी चाहिए।

वद पर—गुलछड़ी की जड़, दूव और सफेदचन्दन एक साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

गुलदावदी

इसका पेड़ प्रायः दो फिट ऊँचा होता है। इसके पत्ते नकसी-दार होते हैं। वीच मे यह कुछ चौड़ा होता है। इसके पत्ते से वहुत सुगन्ध आती है। जंगलों में उत्पन्न होने वाली गुलदावदी के पत्ते वहुत छोटे होते हैं। परन्तु वाग में लगाए जानेवाले पौधे के पत्ते हथेली-जैसे वड़े होते हैं। इसकी सुगंध जङ्गली गुलदावदी के पत्तों की अपेक्षा कम होती है। इसमे पीले और सफेद दो रंग के फूल आते हैं। अतः पुष्प-रग-भेद से यह दो जाति का होता है। यह किंचित शीतल और स्निग्ध है।

फोड़ा फोड़ने के लिए—गुलदावदी के पत्ते मे घी लगा-कर तथा सेंककर वाँधना चाहिए।

घाव पर—इसका मलहम लगाने से लाभ होता है।

दाह पर—इसका पत्ता रखना चाहिए।

उपयोग-सूची

[अकारादि क्रम से]

अ

अंडवृद्धि पर—१०८

अजीर्ण में—८६

अतीसार में—४६, ६०, ६५, ७७, ९४, १०९

अरुचि में—५१, ६७

अर्श पर—९८, ९९, १०८

अर्शरोग में—६१, ६४, ८०, ८३

आँख आने पर—९५

आँख की बीमारी में—२६, २८, ५०, ६१

आग से जलने पर—१०१

उ

उदर रोग में—१०५

उदर विकार में—३४

उदर शूल में—९२

उन्माद में—८१

क

कंठरोग में—५४

कट जाने पर—९८

कफ—१०४

पुष्प-विज्ञान

[द्वितीय-खण्ड]

इस खण्ड में उन पुष्पों का विवरणमात्र देने का प्रयास किया गया है, जो पुष्प अर्वाचीन अथवा योरोपीय अनेक देशों से भारत में आए हुए माने गए हैं। इन अर्वाचीन पुष्पों का गुणावगुण अथवा विशेष विवरण वैद्यक-शास्त्र के निघंटु-भाग में नहीं पाया जाता, अत: उनका गुणावगुण अज्ञात है और रोग विशेष में प्रयोग न होने से उनका केवल विवरण मात्र ही दिया गया है।

अर्वाचीन पुष्प

अबूटीलन बेडफोरडियानम—Abutilon Bedfordianum. 'झुमका' जैसा घासयुक्त लम्बा बढ़ने वाला कोमल वृक्ष है, इसमें हरी-हरी सुन्दर पत्तियाँ होती हैं। इसमें जाड़े के मौसिम में कर्णफूल के सदृश नारंगी-रंग के सुन्दर फूल लगते हैं। पूरा खिल जाने पर यह पौधा सुहावना प्रतीत होता है।

अल्योसिया—Aloysia—इसकी पत्तियाँ बड़ी सुगन्धित होती हैं। शीत ऋतु के प्रारम्भ और अन्त में इसमें काँटेदार लंबे और छोटे दूध के समान सफेद सुन्दर पुष्प आते हैं।

असिसटेसिया—Asystesia यह एक बहुत ही सुन्दर घासयुक्त पौधा है, जिसमें बड़े सुन्दर लाल रंग के पुष्प गोलाकार के वर्ष भर बराबर खिला करते हैं।

बेगोनिया—Begonia अधिकतर पूर्वी हिमालय पर यह पाया जाता है। ये दो प्रकार के होते हैं (१) इसकी पत्तियाँ सुन्दर होती हैं और पुष्प किसी काम के नहीं होते। (२) इसके पुष्प बड़े और सुन्दर होते हैं, किन्तु पत्तियाँ साधारणतः कोई सुन्दर नहीं होतीं।

ब्लेटिया—Bletia यह चीन देश का पौधा है। गुलाबी रंग के पुष्प फरवरी में खिलते हैं।

क्राइसैन्थेमम—Chrysanthemum यह दो-तीन प्रकार

का होता है। दो इंच गोलाकार पीले या सफेद किरण वाले गहरे हरे रंग की आँख वाले पुष्प इसमें होते हैं।

साइसस—Cisஃus यह एक सुन्दर लता है। इसमें शरद ऋतु में पीले, किन्तु छोटे-छोटे पुष्प खिलते हैं, पर वे सुन्दर नहीं होते।

यूफोरबिया जेकीनीफलोरा—Ephorbia Jaquiniflora इस छोटे पौधे में जाड़े की ऋतु के मध्य में सिंदूरी-रंग के चमकदार पुष्प लगते हैं।

यूकारिस अमेजोनिका—Eucharis Amazonica ब्राज़ील देश का यह बहुत सुन्दर पौधा है। जाड़े के दिनों में इसमें पाँच-सात बिलकुल सफेद मन्द सुगन्ध वाले पुष्प खिलते हैं।

यूकारिस कैनडिडा—Eucharis Candida यह संयुक्त प्रदेश अमेरिका का पौधा है। इसमें भी यूकारिस अमेजोरिक सदृश ही पुष्प होते हैं। रंग थोड़ा मटमैला, मोमी रंग का होता है।

फ्रान्सिसिया—Fransiscea यह पेरू और ब्राजील देश की फूलने वाली एक सुन्दर लता है। वहाँ जगलों के सायादार स्थानों में यह उत्पन्न होती है।

फ्युचेसिया—Fuchasias यह पार्वत्य प्रदेश में अप्रैल से सितम्बर तक फूलती है।

जेरानियम—Geranium यह उत्तमाशा अन्तरीप का पुष्पीय वृक्ष है। अब यहाँ भी बहुतायत से होता है। यह कई प्रकार का होता है। किसी की पत्तियाँ ही गुलाब की तरह सुगन्धित

होती हैं, और किसी में साधारण लाल रंग के पुष्प लगते हैं।

जेसनेरा—Gesnera यह छोटा कद का पौधा होता है। पुष्प लगाने पर बहुत सुन्दर मालूम होता है।

हैब्रोथैमनस—Habrothemnus यह पाँच-छः फिट ऊँचा पौधा होता है। पत्तियों की गन्ध अच्छी नहीं होती। वर्ष के भिन्न-भिन्न ऋतुओं में फूल छोटे, गोल, अधपके शंतरे के रंग के खिलते हैं।

होया—Hoya यह जावा का पौधा है। बहुत तरह का होता है। कुछ के पुष्प तो बहुत ही सुन्दर होते हैं।

होया कारनोसा—Hoya Carnosa यह चीन देश का पौधा है। बड़ी ही सुन्दर पत्तीवाला होता है। पुष्प भी मोमीरंग के और सुन्दर तथा चमकदार होते हैं।

होया वेला—Hoya Bella यह माडलयेन का पौधा है। होया कारनोसा के सदृश होता है, किन्तु इसका पुष्प अधिक सुन्दर, और थोड़ा सुगन्धित भी होता है।

होया –Hoya की और भी बहुत सी किस्में होती हैं। जैसे—होया पैक्सटोनी (H Paxtoni) पौटसील (H Potsil) मौलिस (H Mollis) आदि।

हाइड्रैञ्जी—Hydrangea यह चैनेल द्वीप का पुष्प है। यूरोप में इसके पुष्प बहुत ही सुन्दर माने जाते हैं। यह अप्रैल और मई में खिलता है।

हाइड्रैञ्जी जॉपोनिका—H. Japonica उपरोक्त पुष्प के समान इसका भी पौधा होता है, किन्तु इसकी पत्तियाँ लंबी और नुकीली होती हैं, पुष्प केवल बीच की डाल में ही खिलते हैं।

जट्रोफा पानडूरीफोलिया—Jatropha Panduraiphoila यह एक सुन्दर पुष्पीय वन-लता है। साधारण कद की होती है। इसमें ग्रीष्म ऋतु में चमकीले रक्तवर्ण के पुष्प लगते हैं।

लेमोनिया—Lemonia यह क्यूबा की अत्यन्त सुहावनी सदाबहार लता है। इसमें पाँचदल वाले चवन्नी जितने बड़े चमकीले, लाल, गुलाबी रंग के पुष्प लगते हैं।

ओली—Olea यह चार-पाँच फिट ऊँची लता वाला वृक्ष है। यह फरवरी-मार्च में खिलता है। इसमें दूध के समान सफेद, सुगन्धवाले फूल डाल के किनारे पर गुच्छेदार लगते हैं।

ऑरचिड—Orchid के पुष्प-वृक्ष अधिकतर उष्ण कटिबन्ध में पाये जाते हैं। यह अपनी रमणीय बनावट एवं सुगन्धित पुष्प के लिए प्रसिद्ध है, और प्राय सभी लोग अपने उपवन में इसे अवश्य स्थान देते हैं।

पेनटास—Pentas यह एक छोटा लता वाला वृक्ष है। इसमें पीले रंग का छोटा पुष्प लगता है।

रोनडेलेशया—Rondeletia यह एक कड़ी लकड़ी वाला तीन फिट ऊँचा वृक्ष होता है। ग्रीष्म एवं वर्षाऋतु में साधारण कद का लाल नारंगी रंग का पुष्प लगता है।

सलविया—Salvia इसकी कई किस्में होती हैं। किसी में लाल रंग का और किसी में नीले रंग का सुन्दर पुष्प लगता है। सलविया स्प्लेन्डेन्स Salvia Splendens. सलविया एनगस्टीफोलिया Salvia Angustifolia आदि।

सोलेनम—Solanum यह भी कई प्रकार का होता है। सोलेनम केरियास्कूम S. Coaiaceum. सोलेनम एमीनम S. Amocnnm. सोलेनम आरजेनटीयम S Argenteum आदि। इनमें पीले रंग के ग्रीष्मऋतु में पुष्प लगते हैं।

टलौमा—Talauma यह चीन देश का पाँच फिट ऊँचा वृक्ष है। यह सभी ऋतुओं में विशेषत ग्रीष्मऋतु में खिलता है। सफेद रंग के फूल होते हैं, और संध्या समय खिलते हैं। प्रातः काल मुर्भाकर गिर जाते हैं। इसका पुष्प भी उपवन भर को अपनी सुगन्ध से सुगन्धित किए रहता है।

टेट्रानेमा—Tetranema यह आधा फिट ऊँचा, गमला में लगाने लायक पौधा होता है। इसमें पीले रंग का पुष्प प्रायः सभी ऋतुओं में खिलता है।

टोरेमिया—Toremia यह कई प्रकार का होता है। टोरेमिया एशियाटिका T. Asiatica. टोरेमिया फ्लावा T Flava आदि। इसमें पीले रग के घंटी के आकार के पुष्प खिलते हैं, और कोने पर बिलकुल गहरे नीले रंग के होते हैं।

वरवेना—Verbena इसके पुष्प मार्च में खिलते हैं।

एनीमोन कोरोनेरिया—Anemone Coroneria यह एक छोटा पौधा है। इसमें एकहरे और दोहरे बहुत ही सुन्दर भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प खिलते हैं।

एनीमोन जेपोनिका -A. Japonica यह चीन का पौधा है। इसमें दो इञ्च के फटे हुए पीले रङ्ग के बहुत ही सुंदर पुष्प पतझड़ के मौसिम में लगते हैं। इसमें एक सफेद रंग के पुष्प वाला पौधा भी होता है। इसे होनाराइन जौबर्ट Honorine Jobert कहते हैं।

एचिमेनिस—Achimenes यह पौधा बहुत प्रकार के के पुष्प वाला होता है। किसी में लाल, किसी में पीला, किसी में बहुत ही बड़े आकार का, और किसी में छोटे आकार का पुष्प होता है। वर्षा काल में इसमें सुन्दर पुष्प खिलते हैं।

अमेरिलिस—Amaryllis इसमें मार्च अप्रैल में पुष्प लगते हैं।

सिपुरा नौरथियाना—Cipura Northiana गर्मी के मौसिम में इसमें मुलायम, बड़े और पीले रंग के पुष्प लगते हैं।

सिपुरा ह्यूमिलिस—C. Humilis यह छोटे गमले में लगाने का पौधा है। मार्च महीने में मध्यम श्रेणी का नीले पत्तियों का फूल इसमें खिलता है, बीच में पीला रहता है।

आइरिस चिनेसिस—Iris Chinesis इसमें फरवरी-मार्च महीने में बड़े, पीले-नीले रंग के पुष्प लगते हैं। ये छत्तीस

प्रकार के होते हैं और सभी में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प लगते हैं।

आइक्ज़िया फ्लेक्सुओसा—Ixia flexuosa इसमें सफेद रंग का फूल लगता है।

ग्लैडीओलस—Gladiolus इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के चमकीले रंग के सुन्दर पुष्प लगते हैं।

स्पैरैक्सिस लाइनियेटा—Sparaxis Lineata इसमे सफेद रंग का पुष्प, पीले-हरे आँख वाला थोड़ा कालापन लिए हुए होता है।

स्पैरैक्सिस ग्रैन्डीफ्लोरा—Sparaxis Grandiflora इसमें पीले रंग का पीले धारी वाला बहुत ही सुन्दर पुष्प लगता है।

स्पैरैक्सिस ट्राइकलर—S. Tricolor इसमें बहुत ही बड़े नारंगी और पीले रंग के पुष्प होते हैं।

नारसिसस जॉनक्लि—Narcissus Jonquill इसका पुष्प जाड़े के दिनों में खिलता है। आकार में छोटे, किन्तु बहुत ही सुन्दर चमकदार पीले रंग के पुष्प होते हैं।

क्राइनम—इसकी तैंतीस किस्में होती हैं। क्राइनम अमीनम C. Amoenum यह सिलहट मे पाया जाता है। इसमें अप्रैल में चार से छः तक बड़े सफेद पुष्प लगते हैं। क्राइनम डेफिक्सम C. Defixum (सुखदर्शन) इसमें दो से सोलह तक सफेद बड़े-बड़े पुष्प विशेषत' रात्रि के समय खिलते हैं, और बड़े सुगन्धित होते हैं। क्राइनम लौंगीफोलियम C. Longifolium यह बङ्गाल

के दलदल में पाया जाता है। इसमें आठ से ग्यारह तक बड़े पुष्प सुगन्धित होते हैं। क्राइनम ब्रेवीफोलियम C. Brervifolium यह मौरिशस देश का पौधा है, ग्रीष्म और वर्षाऋतु में इसमें दस-बारह बड़े-बड़े सफेद मंद सुगन्धवाले पुष्प लगते हैं। ऐसे ही और भी बहुत से हैं।

हिपीस्ट्रम—Hippeastrum इसमें तारे के समान एक गुच्छे में पाँच पुष्प लगते हैं। ये देखने में बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं।

हायासिन्थ—Hyacinth यह बहुत ही प्रसिद्ध पुष्प है। प्राय शीशे के गमले में लगाया जाता है।

फङ्किया-सबकौरडाटा—Funcia-subeordata यह चीन देश का पुष्प है और बहुत ही सुन्दर होता है। इसकी पत्तियाँ हरी होती हैं। पुष्प बड़े-बड़े सफेद एवं मीठी सुगन्धवाले होते हैं। ये सन्ध्या समय खिलते हैं।

लिलियम लौंगीफ्लोरम—Lilium longiflorum इसमें मार्च में सफेद, सुगन्धित, बड़े-बड़े छः इंच लम्बे पुष्प खिलते हैं।

रिचार्डिया इथियोपिका—Richaredia Ethiopica इसको एरम लिली, नील की लिली, ट्रम्पेट लिली और पिग लिली भी कहते हैं। पुष्प के खिले रहने पर यह पौधा बड़ा ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। इसकी पत्तियाँ तीर के समान नुकीली होती हैं।

जेसनेरा—Gesnera यह बहुत ही सुन्दर वृक्ष है। जनवरी

कफ विकार में—६६, ८६

कर्णमूल पर—१०६

कर्णरोग में—१०९

कान की बीमारी में—२८, ३१, ३६

कास-श्वास में—८६

कुष्ठ पर—१०४

कुष्ठ में—७९

कृमिरोग में—५१, ९२, १००, १०९

केशनाश के लिए—११०

कोढ़ में—३४

कोदो का विष—६९

क्षयरोग में—४३

ख

खाँसी में—८६

खुजली पर—१०८

खुजली में—४०, ४२, ५४, ६९, ७९

ग

गंडमाला में—६९

गरमी में—३१, १०१, १०२

गर्भाधान के लिए—९८

गर्भस्थापन के लिए—१०४

गर्भस्थिति के लिए—५८, ६३ ८३, १०४

गर्भस्राव में—६३

से अप्रैल तक इसमें गोलाकार लाल नारंगी रंग के पुष्प लगते हैं।

ग्लौक्सीनीया—Gloxinia ये अपनी अंडाकार, चमकदार और बड़ी पत्तियों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें घंटा की तरह के पुष्प वर्षाऋतु में लगते हैं और बड़े ही चमकदार होते हैं।

साइक्लामेन—Cyclamen इसमें छोटे-छोटे, किन्तु सुन्दर नाजुक पुष्प लगते हैं।

डहलिया वैरियाविलिस—Dahlia Variabilis इसमें बहुत ही सुन्दर दोहरे पुष्प लगते हैं।

ऑक्ज़ेलिस—Oxalis इसमें जाड़े के दिनों मे पुष्प लगते हैं। अपनो रमणीयता से वाटिका की सुन्दरता बहुत ही बढ़ा देते हैं।

अकेसिया फारनेसियाना—Acacia Farnesiana मीठी सुगन्ध वाला बबूल। यह छोटा, बदसूरत, काँटेदार जङ्गली वृक्ष है, किन्तु जाड़े के दिनों में जब इसमें पुष्प लगते हैं, उस समय यह बड़ा सुन्दर दिखाई पड़ता है। पुष्प चमकीले पीले रंग के होते हैं। इसमें बहुत ही तेज सुगन्ध होती है और पुष्प तोड़कर रखे रहने पर भी बहुत समय तक वह बनी रहती है।

अग्लेया ओडाराटा—Aglaia Odarata यह बहुत ही सुन्दर झाड़ीदार लता है। इसकी चीन देश की पैदाइश है। यह तीन चार फिट ऊँची होती है और इसमें गहरे रंग की तीन-चार इञ्च लम्बी पत्तियाँ होती हैं। गर्मी और वर्षा काल में चमकीले,

पीले रंग के पुष्प इसमें लगते हैं, जो आलपीन के सिर जितने बड़े और बड़े ही सुगन्धित होते हैं। चीनी लोग इस पुष्प को चाय सुवासित करने के काम में लाते हैं।

आरटाबोट्रिस ऑरडोरेटिसीमस—Artabotrys Ordoratissimus इसमें साधारण आकार के जङ्गली सेव के सदृश पुष्प पीले रंग के लगते हैं, और वे पत्तियों में ही छिपे रहते हैं। इसमें से बहुत पके हुए सेव की गन्ध के समान सुगन्ध निकलती है। छोटे सुनहले फल लगने पर यह वृक्ष बड़ा ही सुंदर दिखाई पड़ता है।

आरटेमिसिया लैटीफोलिया—Artemisia latifolia इसमें जाड़े के दिनों में गुच्छे लगते हैं। दूध के सदृश सफेद छोटे-छोटे पुष्प खिलते हैं। यह दिन की गर्मी से अपने चारो ओर कुछ दूर तक हवा को सुगन्धित किये रहता है।

आइक्ज़ोरा—Ixora यह बहुत ही सुन्दर लता है। इसमें बहुतायत से पुष्प लगते हैं।

सीसलपिनीया कोरिआरिया—Caesalpinia Coriaria इस छोटे वृक्ष के पुष्प केवल अपनी सुरभित सुगन्ध के लिए प्रसिद्ध हैं।

साइट्रस—Citrus यह अपने फल-फूल और पत्तियों दोनों के लिए प्रसिद्ध है।

चिमोनैनथस फ्रैगरेन्स—Chimonanthus fragraus

यह एक जंगली लता है। इसमें पीले रग के कड़ी सुगन्ध वाले पुष्प लगते हैं।

क्लेरोडेन्ड्रन फ्रैग्रैन्स—Cleıodendron fragrans इसकी कई किस्मे होती हैं। इसकी पत्तियाँ बड़ी और नीची होती हैं। इसमें छोटे गुलाब के समान पुष्प होते हैं। उनके किनारे सफेद रंग के होते हैं। इस वृक्ष में गर्मी और वर्षाकाल में फूल लगते हैं। ये फूल उग्र सुगन्धवाले होते हैं।

हेलियोट्रोपियम—Helıotropıum यह वृक्ष बहुत ही घना और लंबा-चौड़ा होता है। निलगिरि और उटकमंड पर्वतों पर दस फिट लंबा और चालीस फिट घेरादार भी देखा गया है। शीतऋतु के अन्त में इसमें छोटे-छोटे पुष्प लगते हैं। इसकी मीठी सुगन्ध होती है।

फ्रैन्सिसिया लैटीफोलिया—Francıscea latıfolia यह छोटी साधारण लता बहुत ही रमणीय होती है। इसकी पत्तियाँ मुलायम अंडाकार हरे रंग की होती हैं, और वे जाड़े में गिर जाती हैं; किन्तु फरवरी के अन्त में नई पत्तियाँ फिर निकलती हैं, साथ ही चिपटे अगणित संख्या में सुगन्धवाले रुपये के आकार के पुष्प भी लगते हैं। ये पहले नीले रंग के होते हैं और पीछे सफेद हो जाते हैं। इसके पुष्प जुलाई में भी खिलते हैं।

मिलिङ्गटोनिया--Mıllıngtonıa यह बहुत सुन्दर ऊँचा वृक्ष होता है। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती हैं। जाड़े के

दिनों मे इसमें बिलकुल सफेद, सुगन्धित बड़े-बड़े पुष्प लगते हैं।

हेडीचियम—Hedychium यह नैपाल और खसिया पर्वतों पर पाया जाता है। यह कम-से-कम चौबीस प्रकार का होता है। हेडीचियम कौरोनेरियम Hedychium Coronarium इनमें सबसे अधिक सुन्दर होता है। वर्षाकाल में इसमें अगणित नालें तीन-चार फिट ऊँची एक के बाद दूसरी निकलती हैं, जिसके सिरेपर बिलकुल सफेद पुष्प लगते हैं। इसकी मनभावनी सुगन्ध सन्ध्या समय मिलती है, और वह बहुत दूर तक फैलती है। एक किस्म में पीले पुष्प भी लगते हैं।

हेडीचियम क्राइसोल्युकम—H. Chrysoleucum इसमें भी ऊपर वर्णित पुष्प लगते हैं, किन्तु रंग नारंगी होता है।

यूपैटोरियम ओडोरेटम—Eupatorium Odoratum यह एक बहुत ही रमणीय छोटा पौधा है। इसकी दोनों टहनियों में सितम्बर एवं अक्टूबर मास में बहुत ही मुलायम पर के समान बहुत ही छोटे-छोटे सुगन्धित पुष्प लगते हैं।

हैमिलटोनिया अजोरिया—Hamiltonia Azurea इसकी शाखायें नाजुक होती हैं। दिसम्बर में बहुत ही छोटे, किन्तु बड़े चमकीले पुष्प अत्यधिक संख्या में लगते हैं। इसकी सुगन्ध चारो ओर दूर तक फैलती है।

लोनीसेरा जैपोनिका—Lonicera Japonica इसमें सब ऋतुओं में विशेषत शीत काल में सफेद और पीले रंग के बहुत

ही सुगन्धवाले पुष्प लगते हैं।

लोनीसेरा सेम्पर्वीरेन्स--L. Sempervirens इसके पुष्पों मे सुगन्ध नहीं होती। पुष्प गहरे लाल और सुन्दर होते हैं।

डलबर्जिया सीसो--Dalbergia Sissoo यह जंगली वृक्ष है। इसके पुष्प हरे रंग के होते हैं। इसमें उग्र सुगन्ध होती है। संध्या समय ये अपने सुगन्ध से वायु को सुवासित कर देते हैं।

मैगनोलिया ग्रैण्डीफ्लोरा—Magnolia Grandiflora पन्द्रह फिट या इससे भी अधिक ऊँचा इसका वृक्ष होता है। इसका जन्मस्थान कैरोलीना है। यह अपनी पत्तियों के लिए प्रसिद्ध है। अप्रैल में इसमें सफेद भड़कीले और सुगन्धित पुष्प लगते हैं।

फोटिनीया डूबिया—Photinia Dubia जनवरी में छोटे-छोटे पुष्पों से लदे हुए गुच्छे इसमें लगते हैं। ये अपनी तीव्र सुगन्ध से वहुत दूर तक वायु को सुवासित कर देते हैं।

स्टाइलोकोराइन वेवेरी—Stylocoryne Weberi यह साधारण ऊँचाई का विटप है। इसकी पत्तियाँ मुलायम चमकीली चमड़े के समान मोटी तीन साढ़े तीन इञ्च लम्बी होती हैं। जनवरी-फरवरी में मटमैले रंग के सुन्दर पुष्प इसमें खिलते हैं।

पोर्टलैण्डिया ग्रैण्डीफ्लोरा—Portlandia Grandiflora यह जैनेका देश का वृक्ष है, और वहाँ यह चट्टानो पर पाया जाता है। शीतकाल को छोड़कर यह सब ऋतुओं में खिलता है।

संकेताक्षरों का विवरण

द्रव्य-नामों के प्रत्येक भाषा के संकेताक्षरों का परिचय ।

सं०—संस्कृत

हि०—हिन्दी

ब०—बङ्गाली

म०—मराठी

गु०—गुजराती

क०—कर्णाटकी

तै०—तैलङ्गी

ता०—तामिल

अ०—अरबी

फा०—फारसी

अँ०—अँग्रेजी

लै०—लैटिन

पुष्प-विज्ञान के लेखक की

प्रकाशित

अन्य रचनाएँ

आहार-विज्ञान— . ... मूल्य २)

वनस्पति-विज्ञान— .. मूल्य १॥)

आरोग्य-विज्ञान— .. ... मूल्य १॥)

सुखी-गृहिणी— ... ... मूल्य १)

जीवन-रक्षा— .. .. मूल्य ॥)

गलितकुष्ठ में—२८
गुदभ्रंश में—७२
गुदभ्रंश रोग में—२९, ४८

घ

घाव पर—११३
घाव में—२८, ३१, ३४

च

चेचक में—४२
चोट लग जाने में—८०

ज

ज्वर में—३१, ३९, ४०, ७३, ७७, १०४

त

तृषा में—८७
त्वचा रोग में—२६

द

दंत रोग में—४६, ५८, ७७, ८६
दाद में—२०, ६९
दाह पर—१००, ११३
दाह में—४४, ४९, ५४, ५५, ५९, ७३, ७४, ९८
दूध बढ़ाने के लिए—५१
दूध-विकार शांत करने के लिए—११२

ध

धातु रोग में—५७, ६४, ७२, ९२

धातु-विकार में—४६, ११०

न

नशा में—१११

निद्रा लाने के लिए—६०, १११

नेत्र-रोग में—७९, १०६

प

पथरी में—९६

पशु-रोग में—४८

पसीना आने में—८४

पांडुरोग में—९१

पित्त-विकार में—९३, ९५

पित्त-शाति के लिए—२६, २८, ३४, ४२, ४९, ५८, ६३, ७३, ७४

पीनस में—१००

पीनस रोग में—९१

पेट-दर्द में—१०१

प्यास में—४२

प्रदर में—२६, ४०, ५३, ६४, ७७, ८०, ८३, ८४

प्रमेह में—४२, ५४, ६४, ६५, ६९, ७३, ७५, ८३, ८७, ९३, ६६, ९८

फ

फोड़ा पर—१०६

फोड़ा फोड़ने के लिए—११३

फोड़ा में—३९, ५०, ६१, ६५, ७७

फोड़ा में कीड़े पड़ जाने पर—९९

फोड़े पर—९८, १००, ११०, १११

व

बद पर—११३

बहरेपन में—१००

बहुमूत्र में—६४

बालकों की खाँसी पर—१०२

बालरोग में—४६

बिच्छू के विष में—१९

भ

भ्रम रोग में—६१

म

मुख रोग में—३१, ५०, ५८

मुँह के छालों पर—९८

मुहाँसा में—५५

मुहाँसे पर—१०६

मूत्रकृच्छ्र पर—१११

मूत्रकृच्छ्र में—७६, ९९, १०२

मूत्र-विकार में—३६, ९२, १११

मृगी में—५३, ८१

मृगी रोग में—६७

मोंच पर—१०८

य

यकृत में—८२

र

रक्त पित्त में—७४, ९१, ९९, १११
रक्त प्रदर में—९५
रक्त विकार में—८०
रक्तस्राव में—८३, ९१, ९३, ९५

व

वमन के लिए—२८, ३१
वमन मे—६९, ८२, ८७
वातरोग में—५८, ६०, ६३, ६७, ७९, ८६
वात विकार में—३४, १०७, १०९
विरेचन के लिए—२५, ३९, १०४
विलनी में—८७
विष पर—१०६, ११२
विष में—३४, ४९, ८७, ९१
विसर्प रोग में—४४
वीर्यस्राव पर—११०

श

शरीर के छालों पर—११३
शरीर-पीड़ा में—३४
शिरोवेदना में—३६
शिरोरोग में—४६, ४८, ६३, ६६, ९१, १०४
शोथ-रोग में—२८, ५९, ६७
शोफोदर पर—१०४

श्वासरोग में—८६, १०९, ११२

स

संग्रहणी में—८३
सर्पदंश में—३९, ४०
सर्पविष पर—१००, १०२
सर्पविष में—६९, ७६
सिरदर्द में—४७, ५४, ६६, ९१
सुजाक में—९९
स्तनरोग पर—१०६
स्वरभंग में—८४

ह

हरताल के विष पर—१०४
हृद्रोग में—४६
हैजा पर—१०६

पुष्प-विज्ञान

[प्रथम-खण्ड]

वैद्यकशास्त्र के निघंटुभाग के पुष्पवर्ग मे जिन पुष्पों का उल्लेख है, वे तथा और जितने पुष्प सर्वसाधारण के लिए विशेष उपयोगी एवं महत्व के हैं, उन्ही का उल्लेख किया गया है। तथा पुष्प-सम्बन्धी अनेकानेक आवश्यक और महत्वपूर्ण बातें भी प्रारम्भिक अंश मे बताई गई हैं।

आरम्भिक

प्रकृति की अलौकिक रूप-छटा देखकर प्राणीमात्र मुग्ध, चकित और स्तम्भित हो जाते हैं। यह सृष्टि जितनी ही मनोरम एवं कमनीय है, उतनी ही विचित्र और अलौकिक भी है। ज्योत्स्नामयी रजनी, नीलाभगगन में चन्द्रमंडल और जगमगाते हुए तारागण; हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वत-शिखर, कल-कलनिनादिनी सरिता की मृदु श्रुति, रंग-विरंग के पुष्प, लताएँ और पौधे तथा आकाशचुम्बी वृक्ष, अरुणोदय और उदयस्ताचलगामी सूर्य की अनुपमेय एवं मनोरम छटा आदि प्रत्येक दर्शक के चित्त को अनायास ही चुरा लेने वाली हैं।

प्रकृति के अगणित इन रूपों को देखकर हमारे मन मे इसकी स्रष्टा प्रकृति देवी की सुरुचि, कला-कौशल एवं उसकी कल्पना का अनुमान करना भी असम्भव हो जाता है। यों तो सृष्टि के जितने भी सुन्दर पदार्थ हम देखते हैं वे सभी उपयोगी और सारगर्भित प्रतीत होते हैं, किन्तु उसमे से किसी भी पदार्थ के विषय में उसकी सारहीनता अथवा निरुपयोगिता की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। प्रकृति की सभी प्रकार की सृष्टि में पुष्पों का स्थान बहुत ही ऊँचा है। संसार का सबसे बड़ा हृदयहीन और नीरस व्यक्ति भी पुष्पों की अकथनीय सुन्दरता देखकर मुग्ध हुए बिना न रह सकेगा। उनकी

रंग-बिरंगी—सफेद, नीली, काली, लाल, गुलाबी और पीली—पंखुड़ियों को देखकर किसका हृदय गद्‌गद्‌ नहीं हो उठता, एवं उनकी सुरभित मदमाती सुवास किस हृदय को नहीं मुग्ध कर लेती ? अबोध से लेकर सुबोध तक, मूर्ख से लेकर विद्वान् तक और स्त्री से लेकर पुरुष तक, याने प्राणीमात्र का हृदय इसके लिए लालायित रहता है।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पुष्पों में कोई ऐसी अलौकिक विशिष्टता सन्निहित है, जिसके कारण सभी लोग इससे अनुराग रखते हैं। पुष्प के इतना आकर्षक होने का कारण वास्तव में इसकी अपूर्व और मनोहारिणी सुन्दरता है। कमनीय कान्ति, मृदु और स्निग्ध रूपमाधुरी ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। यद्यपि पुष्प की आयु अत्यल्प और अचिरस्थायिनी होती है, तथापि वे अपने उसी अल्पकालीन जीवन मे संसार को अपनी दिव्य सुन्दरता और मधुर सुगंध के कारण मुग्ध कर अपने प्रफुल्ल और सुखपूर्ण जीवनादर्श का अनुसरण करने का उपदेश देते हुए अनन्त के गर्भ मे विलीन हो जाते हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय को मुग्ध करनेवाला गुण उनकी दूसरी अपूर्व विशेषता है। पुष्पों का स्पर्श अत्यन्त शीतल एवं सुखद होता है। उनकी सौन्दर्य-छटा को देखकर नेत्र भी अपने को धन्य समझते हैं। उनकी सुवास का आनन्द लेकर घ्राणेन्द्रिय भी अपने को कृतकृत्य समझती है। हृदय भी अपना सगा-सम्बन्धी समझ कर आनन्द-विभोर हो उठता है। जिस प्रकार पुष्पों का

सौन्दर्य देखकर और उनके सुगन्ध का आनन्द लेकर सभी ज्ञाने-न्द्रियाँ प्रफुल्लित हो उठती है, उस प्रकार प्रकृति के किसी भी अन्य पदार्थ को देखकर वे प्रफुल्लित नहीं होतीं। इसी कारण प्रकृति की सृष्टि का सबसे बड़ा सुन्दर पदार्थ पुष्प ही माना गया है।

पुष्पों की उपयोगिता

सृष्टि के आदिकाल मे जब हमारे पूर्वज अरण्यो और गिरि-गह्वरों में पशुओं की भाँति अपना जीवन-यापन करते थे, उस समय वे प्रकृति की देन पर ही अपना सुख और सौभाग्य समर्पित किए हुए थे। उस समय सभ्यता के विकास का नाम तक भी न था। उस समय वे जंगलों मे होनेवाली वनस्पतियो का ही आहार करते तथा झरना एवं सरिताओं का ही जल पीकर अपनी क्षुधा और पिपासा शान्त कर प्रकृति की गोद मे पडे रहा करते थे। उस समय ग्रामों और नगरों का निर्माण नहीं हुआ था। न तो उस समय खाद्य पदार्थों के उत्पन्न करने का ही क्रम आरम्भ हुआ था। सूर्य, चन्द्र, तारागण, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष और अरण्यसमूह ही बन्धु-बान्धव और कुलपूज्य देवता थे। अतिशीत, अतिवृष्टि एवं ग्रीष्म-कालीन उत्तप्त लू को वे प्रकृति का कोप समझकर अपनी मंगल कामना के लिए दृष्टिपथ मे आनेवाले इन्हीं प्राकृतिक पदार्थों का ही पूजन किया करते थे।

उस समय वस्त्र-निर्माण का नाम भी कहीं न था। उस समय के लोग तो वृक्षों की छाल से ही अपनी लज्जा-निवारण करते थे। मनुष्य जाति स्वाभाविक शृंगारप्रिय है। अतएव वह पुष्पों की अनुपम सुन्दरता की ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सकी। आज जहाँ हम लोग स्वर्ण और रजत के आभूषणों से अपने को विभूषित करते हैं, वहाँ प्राचीन समय में लोग पुष्पों के ही आभूषण से अपने को विभूषित किया करते थे। उस समय कानन-कुसुम और लता-समूह ही मानव जाति के शृगार का प्रथम साधन हुई। अनेक बातों के निष्कर्ष से हम उस पथ पर पहुँच जाते हैं, जहाँ से हम भलीभाँति यह देख सकते हैं कि सृष्टि के आदिकाल से ही पुष्पों और वनस्पतियों का उपयोग मानव जाति ने आरम्भ कर दिया था। और पवित्र पुष्प-समूह हमारे शृगार-साधन हो गए। उस आदि-काल में जब कभी वे प्रकृति के नियमों का उल्लघन करके व्याधि ग्रस्त होते थे, उस समय ये ही पुष्प और वनस्पतियाँ उनके जीवन-रक्षक और आरोग्यदाता थे। उस समय उनके लिए अन्य पदार्थ किसी प्रकार भी प्राप्य न थे। अत उन्हें उन्हीं वनस्पतियों और पुष्पों के द्वारा ही सतोष प्राप्त होता था।

सभ्यता के विकास ने क्रमश उन्हें इसके लिए बाध्य किया कि वे लोग इन जड़ी, बूटियों, फल, मूल, कन्द, पत्र और पुष्पों के विषय का अपना अनुभव याद करते चलें। बस यहीं से औषधियों के गुणावगुण-विवेचन का श्रीगणेश हुआ। उसी गुणावगुण के

विकास ने उन्हे यह बतलाया कि वे इसके सूक्ष्मतर गुणो का भी अनुभव करें। अस्तु। पहले-पहल जिन लोगों ने गुणावगुण का सक्रियात्मक अनुभव किया था, वे अनुभव दूसरों पर प्रकट करने लगे। सभ्यता के विकास ने धीरे-धीरे अगली पीढ़ियों के मन में इस बात की भावना प्रादुर्भूत की कि वे उसे तत्कालीन अपनी भाषा मे लिपिबद्ध करते चलें। क्रमश. भाषा का भी विकास होने लगा और धीरे-धीरे गद्य तथा पद्य में वे ही गुणावगुण अनेक आविष्कारों से विभूषित होकर लिखे जाने लगे। जिसका परिणाम आज अनेक चिकित्साशास्त्रों और पद्धतियों का रूप है।

वृक्षों के विषय में

इस जगत् में जितने भी जीवधारी हैं, सभी प्रकृति-सृष्टि के अलौकिक और अद्वितीय पदार्थ हैं, किन्तु वानस्पत्य जगत् का सृजन महान, अलौकिक एवं विशेष कुतूहलजनक है। संसार में जितने भी चेतनाधारी जंगम पदार्थ हैं, सभी का एक—स्त्री-पुरुष—जोड़ा है, और उसके परस्पर के समागम से गर्भाधान होकर सृष्टि का क्रम अवाधित गति से चल रहा है, किन्तु बहुतो की समझ से वनस्पति जड़ पदार्थ हैं, उन्हे किसी प्रकार का अनुभव नहीं होता; किन्तु जिनकी यह धारणा है वे नितान्त भ्रम में है। प्रत्येक वन-स्पति, वृक्ष और पुष्प हमारी ही भाँति सुख और दुख का अनुभव

करते हैं। उन्हें भी किसी तेज पदार्थ से आघात पहुँचाने पर उतना ही कष्ट होता है, जितना हमें शस्त्र-प्रहार से। वे भी हमारी ही तरह हँसते, रोते, आहार-विहार करते एवं शयन और उत्थापन करते हैं। उनका हिलना और काँपना भी अपनी भाषा में अपने मनोगत भावों का प्रदर्शनमात्र समझा जाता है। उन्हें भी युवा, जरा, व्याधि, मरण और जीवन का सुख-दुख भोगना पड़ता है। इस विषय में डाक्टर सर जगदीशचन्द्र बोस का मत वास्तव में भारतवासियों का मस्तिष्क ऊँचा करनेवाला है। हमारे प्राचीन ग्रथों में भी कहा है—

क्षुत्पिपासा च निद्रा च वृक्षादिष्वपि दृश्यते।
मृत्तगदानतस्वाद्येऽपरा सिंकोचतोतिमा॥

भूख, प्यास और निद्रा—ये तीनों वृक्षादिकों में भी पाई जाती हैं, क्योंकि वे मिट्टी का आहार करते और जल का पान भी करते हैं। मिट्टी और जल न मिलने पर ये मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इस बात का अनुभव कर सकता है कि रात के समय वृक्ष के पत्ते स्वाभाविक मलीन हो जाते हैं और प्रातःकाल उनमें सूर्योदय के साथ-ही-साथ एक नव्य शक्ति का सचरण होता है। अतएव यह सिद्ध हो जाता है कि वृक्षादिक भी शयन अवश्य करते हैं। इसी प्रकार मानव शरीर की भाँति वृक्षादिकों में भी पंच महातत्व अवस्थित हैं। कहा है—

यत्काठिन्यं सा क्षित्योद्भवांभस्तेजस्तूष्मावद्धते यस्य वात ।
यद्यच्छिद्रं तन्नभः स्थावराणामित्येषां पचभूतात्मकत्वम् ॥

वृक्षो में कठोरता पृथ्वी का, आर्द्रता जल का, उष्णता अग्नि का, वृद्धि वायु का और छिद्र आकाश का अंश है।

संसार में प्राय: किसी एक स्वार्थ का आश्रय लेकर ही एक दूसरे की सहायता करते हैं। किन्तु निस्वार्थ सेवी तो संसार में विरला ही दीख पड़ता है। लेकिन वृक्षों के विषय मे यह वात एक स्वर से निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि वे निस्वार्थ सेवी हैं। संसार मे स्वयं वे किसी आनन्द का उपभोग नही करते। वल्कि अपनी सुशीतल छाया से श्रान्त पथिको के श्रम को दूर करते एवं अपने प्रत्येक अग को हमारे हाथ इस प्रकार समर्पित कर देते हैं कि हम उनका जिस प्रकार चाहे उपभोग करें। यही वात वनस्पतियो और पुष्पों के विषय में भी है। हमें इन जड़ पदार्थों की आदर्श सेवा का अनुसरण करके कुछ सीखना चाहिए। क्योकि संसार में वे किसी भी वात के इच्छुक नही हैं। कहा है—

मूलत्वक्सारनिर्यास नाडिस्वरस पल्लवा ।
क्षारा: क्षीरफलं पुष्प भस्म तैलानि कंटका ॥
पत्राणि शुङ्ग कंदाश्च प्ररोहाश्चोपकार ।

मूल, छाल, सार, गोंद, नली, स्वरस, पत्र, क्षार, दुग्ध, फल, पुष्प, भस्म, तैल, कंटक, पत्ते, अंकुर, कंद और वृक्षों के अनेकानेक अंग-उपांग महान परोपकारी हैं।

हम अपने चारों ओर जिन लताओं, पौधों एव विशाल वृक्षों को देखते हैं, उनमें से अधिकांश इसी पुष्प से ही उत्पन्न होनेवाले बीज के सुफल हैं। जब हम एक साधारण-सा पुष्प लेकर उसमें उत्पन्न होनेवाले छोटे-छोटे बीजो को देखते हैं और उससे उत्पन्न होनेवाले आकाशचुम्बी वृक्षों का स्मरण करते हैं, तब हमारे आश्चर्य की सीमा ही नहीं रह जाती। कहाँ वट-फल के सुपारी-जैसे आकार के भीतर राई से भी छोटे-छोटे अनन्त बीज समूह और कहाँ दीर्घ-काय वट-वृक्ष ! यह केवल प्रकृति की रचना का कुतूहल मात्र ही कहना उचित होगा। इसे ही राई से पर्वत कहा जा सकता है।

स्त्री और पुरुष भेद

यहाँ पर वृक्षों के स्त्री और पुरुष भेद पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि दोनों के समागम बिना सृष्टि का क्रम चलना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है। इनकी उत्पत्ति भी मनुष्यों की ही तरह होती है। कहा है—

स्निग्ध दीर्घं पल्लव चित्तहारि पुष्पाद्य चेत्स्त्री मता सा भिषग्भि ।
स्थूला पारुष्य भाजस्त इह निगदिता पूरुषा वैद्यवर्यैं ॥

जिसके पत्ते और पुष्प चिकने, बडे मनोहर और कोमल हों, उसे वैद्य लोग स्त्री जाति का कहते हैं। एवं जिनके पत्रादिक, मोटे, खरखरे और मम्भोले कद के हों, उसे पुरुष जाति का कहते हैं।

स्त्री और पुरुष भेदों से सम्पूर्ण वृक्ष दो प्रकार के माने गए हैं। वृक्षों के पुष्प उनके ऋतु-धर्म और फल उनकी सन्तान हैं। वृक्षों की सन्तान भी स्त्री वृक्ष और पुरुष वृक्ष के संयोग से ही होती है। एक दल और द्विदल भेदो से भी वृक्ष की दो जातियाँ हैं। एक दल वृक्ष केला, नारियल, ज्वार और बाजरा आदि हैं। द्विदल वृक्ष घुमची, मूँग, मसूर आदि हैं। एक दल जाति के वृक्षो की दो दालें नहीं होतीं। ये ही वृक्ष स्त्री-पुरुष की भाँति परस्पर के संयोग से फल रूपी सन्तान को उत्पन्न करते हैं। जैसी सन्तान वृक्षों से उत्पन्न होती है, वैसी पशु-पक्षी अथवा मनुष्यो से नही होती। एक वृक्ष से करोड़ों बीज उत्पन्न होते हैं और साथ ही उनके कन्द, मूल, फल, पत्ते और डंठादि से वृक्ष उत्पन्न होते हैं। वृक्षों के सन्तान होने की यह एक अलौकिक और निराली बात है। अनेक प्रमाणों और तर्क-वितर्कों के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि प्रत्येक जड़ और चेतन पदार्थों मे भी स्त्री और पुरुष जातियाँ हैं।

जब कोई वृक्ष अपनी युवावस्था पर आता है तब उसकी डंठी के अग्रभाग मे कोपल पर पुष्पों का वेष्टन दिखाई पड़ता है। इसे अंग्रेजी मे "केलीफ" कहते हैं। पहले उनमें छोटी-सी डठी हरे रंग की निकलती है। वह डंठी गोलाकार और चारों ओर से ढँकी रहती है। इस डंठी के ऊपर के दो छिलके, डंठी के भीतर के अवयवों का पानी, ओस, धूप, हवा आदि से रक्षा करते हैं। परमेश्वर ने भीतर के इन्हीं अवयवों के बचाव के लिए यह एक भारी पर्दा जन्मकाल ही से दे

दिया है। ज्यों-ज्यो भीतर के अवयवों की वृद्धि होती जाती है, यह ऊपर का हरा छिलका मुख के पास से हटता जाता है और कली मुस्कराती हुई बाहर निकल आती है। इस डठी या केलीफ की कली नीले रग की होती है। जब वह कली तरुण हो जाती है तो वेष्टन को बिखेर कर प्रफुल्लित हो फूल-रूप में दीख पड़ती है। उसके भीतर कोश होता है और पुष्पदल या पंखुरी अलग-अलग दीखने लगती हैं। धीरे-धीरे यह पखुरियाँ खिल जाती हैं और उनमें पराग-केशर दीखने लगता है। पुष्पकोश को अँग्रेजी में "कोरोला" कहते हैं। कमल आदि पुष्पों में ये वृत्त नहीं होते। उन पुष्पों के ऊपर की पंखुरियाँ खरेरी और नीले रग की होती हैं। इस पुष्प-कोश के भीतर नर-नारी रूप से ततु होते हैं। नर-ततु को "ष्टेमन" और नारी-ततु को "पिष्टल" कहते हैं।

पराग-केशर के पतले-पतले लच्छे दो तरह के होते हैं। एक किनारेवाले लच्छे और दूसरे बीचवाले लच्छे होते हैं। कुछ पुष्पों में बीचवाला लच्छा बड़ा और कुछ में छोटा होता है। नर ततुओं के ऊपर रज सा लगा रहता है जिसे सस्कृत में पराग या पुष्परज कहते हैं। इस पराग को अँग्रेजी में "पोलन" कहते हैं। पराग, मकरन्द, पुष्प-धूलि अथवा पुष्परज पीले रग के चूर्ण के समान पुष्प पर झरता है। इसे ही पुष्प का वीर्य कहते हैं। इसी पराग-धूलि से गर्भ-स्थिति होती है। पराग-केशर का लच्छा पुरुष और बीच का लच्छा स्त्री होता है। उसे गर्भ-केशर कहते हैं। गर्भ-केशर

के नीचले भाग में गर्भ रहता है। और वहीं से वीज अर्थात फल की उत्पत्ति होती है। नारी-तंतु खोखला होता है। उसका मुख खुला रहता है। यही योनि है। जिसे अँग्रेजी में 'ष्टिग्मा' कहते हैं।

नारी तंतु जिस स्थान से उत्पन्न होते हैं उनको गर्भाशय कहते हैं। गर्भाशय को अँग्रेजी मे "ओवरी" कहते हैं। योनि और गर्भाशय के बीच में जो मार्ग होता है, उसे "स्टाइल" कहते हैं। इस स्टाइल में छोटे-छोटे वीर्य-कण होते हैं। इसे "कोह्लिला" कहते हैं। यह पवन के द्वारा पड़ कर योनि के भीतर जाता है और वहाँ से गर्भाशय मे जाकर गर्भ की परिपुष्टि में सहायक होता है। गर्भ-केशर का अपना भाग कुछ मोटा होता है और उसे ध्यानपूर्वक हाथ से स्पर्श करके देखने से उसमे गोद की भाँति लसदार एवं चिपकनेवाला पदार्थ दीख पड़ता है। इसी तरल पदार्थ पर पराग-कण झरता है, तथा उसमे जाकर चिपक जाता है। इस तरल पदार्थ के रासायनिक गुण एवं धर्म के प्रभाव से पराग-कण फूटकर अपना आवश्यक रस गर्भ-केशर की पतली नली के द्वारा गर्भाशय तक पहुँचा देता है। वहाँ पर पहुँचा हुआ बीज काल पाकर यथा समय पुष्ट होता है।

यह नर केशर और नारी केशर प्रत्येक पुष्प में होता है। ये कभी-कभी, किसी-किसी पुष्प मे पृथक् भी पाए जाते हैं। उनका संयोग वायु से या पतंगादिक जीवों से होता है। वे पतंगादि नर केशरवाले पुष्पों पर से जाकर नारी केशरवाले पुष्पो पर बैठते हैं।

तब उनके शरीर में लगा हुआ पुष्परज नारी केशर के मुख में जाकर गर्भ-बन्धन का कारण होता है।

भीतर ज्यों-ज्यों गर्भ पुष्ट होता जाता है, त्यों-त्यों बाहर की पखुरियाँ मलीन हो कर झरती जाती हैं और ठीक समय पर दाना निकल आता है। गर्भ-स्थिति के लिए पराग के अनेक कणों की आवश्यकता होती है। अन्यथा पराग की न्यूनता के कारण पुष्प में वन्ध्यात्व दोष की आशंका रहती है।

गर्भ-केशर के सिरे तक पराग दो प्रकार से पहुँचता है। एक तो वायु के द्वारा और दूसरे चींटियों, कीटों, भ्रमरों आदि के द्वारा। जब वायु से पौधे की डाली हिलती है तब पराग उड़कर गर्भ-केशर पर पड़ जाता है। दूसरे जब कोई कीट या भ्रमर पुष्प पर आकर बैठता है तब उसके पैर या पख में गर्भकण चिपक जाते हैं और वह वहाँ से उड़ कर जब दूसरे पुष्प पर बैठता है तब उसके पैरों में लगे हुए गर्भकण वहाँ पर गिर जाते हैं। जब एक केशर का पराग दूसरे पुष्प वा पौधे के पुष्प पर पड़ता है, तब वह पुष्प अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वृक्षों में बहुत दूर से भी संयोग होता है। एक वर्ग के वृक्ष समीप होने से नर पुष्प का रज नारी तंतुओं में चले जाने से संकर जाति के वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं। उस समय उनके गुणावगुण का निर्णय करना कठिन हो जाता है। इसीसे अंग्रेजी के वनस्पतिशास्त्रियों ने वृक्षों की पत्तियों के गुणावगुण पर उनका नामकरण किया है। जिससे उनके

गुणावगुण के निर्णय में कोई भेद-उपभेद की आशंका नहीं रह जाती। प्राय: देखा जाता है कि एकही वृक्ष मे भिन्न-भिन्न रंग के पुष्प लगते हैं। कुछ ऐसे भी वृक्ष होते हैं, जिन्हे अपुष्प कहा जाता है। यद्यपि वास्तव मे उनमें भी फल लगते हैं। किन्तु उनके पुष्प दिखाई नहीं पड़ते, इससे प्रतीत होता है कि उनके पुष्प के साथ ही फल निकल आते हैं। परन्तु वास्तविक वे अपुष्प नहीं हैं।

स्त्री-पुरुष वृक्षो के अतिरिक्त नपुंसक जाति के भी वृक्ष होते हैं। अतएव अव यहाँ से इसके तीन भेद हो जाते हैं। कहा है—

पुंसो वध्वाश्च लिग मिळति च यदि वा क्लीवता साभिधेया।
स्वं स्वं स्वे स्वे नियुक्तं गदिजनकल्पदं भेषजं तत्कृतं च॥

जिन वृक्षों में पुरुष और स्त्री जाति के लक्षण एक साथ मिलते हों, उन्हे नपुंसक जाति का वृक्ष कहना चाहिए। स्त्री जाति के वृक्ष स्त्रियों को, पुरुष जाति के वृक्ष पुरुषों को और नपुंसक जाति के वृक्ष नपुंसकों के लिए हैं। इतना विचार करने पर ही वृक्ष, वनस्पति और पुष्पादिक यथेष्ट लाभ पहुँचा सकते हैं। आज इन्हीं विचारों को भूल जाने का फल हमें मिल रहा है कि हम इस वनस्पति-चिकित्सा मे विफल हो रहे हैं और अपनी विफलता का कारण उनकी गुणहीनता समझ रहे हैं। कहा है—

द्रव्य पुमान्स्यादखिलस्य जतोरारोग्यद तद्बलवर्द्धनश्च।
स्त्री दुर्वला स्वल्पगुणा गुणाढ्याः स्त्रीष्वेवक्वापि नपुंसकं स्यात्॥

पुरुष जाति की औषधि आरोग्यजनक एवं बलवर्द्धक होती है।

स्त्री जाति की औषधि दुर्वल, अल्प गुणवाली, किन्तु स्त्रियों के लिए अतीवहितकारी कही गई है। नपुसक जाति के वृक्ष और वनस्पतियाँ किसी के लिए भी उपयोगी नहीं हैं। यही पुष्पों के विषय में भी है।

किन्तु मैं इस कथन की सत्यता मे किंचित् संदेह करता हूँ, क्योंकि स्वानुभव से यह सिद्ध हुआ है कि प्रत्येक जाति के वृक्ष प्रत्येक जाति के लिए उपयोगी हैं। वृक्ष के समान ही पुष्पों के विषय में भी समझना उचित है।

पुष्प-धारण के गुण

पुष्पमस्य धारण कान्तिवर्द्धन कामकारकम्।
ओज श्रीवर्द्धक चैव पापग्रह विनाशनम्॥

पुष्प धारण करने से कान्ति, काम, ओज और श्री का वर्द्धन होता है तथा पापादिक ग्रह विनष्ट हो जाते हैं।

वास्तव में प्रकृति ने विश्व मे जितने सुन्दर और मनोहर पदार्थों की सृष्टि की है, उनमें पुष्पों को ही वहुत उच्च और आकर्षक स्थान प्रदान किया है। इसकी अनुपम शोभा पर आकृष्ट होकर मानव जाति ने सभ्यता के आदि काल से ही अपने सौन्दर्य वर्द्धन के लिए इन्हें अपना एक आभूषण वना लिया। वास्तव में 'पुष्पमस्य धारणं कान्ति वर्द्धनम्' अक्षरश. सत्य और सुष्टु प्रतीत होता है। पुष्पो के

धारण करने से मनुष्य की अद्भुत शोभा बढ़ जाती है। यही कारण है कि अनन्तकाल से स्त्री-पुरुष और छोटे-छोटे बच्चे तक इसे धारण करने के लिए लालायित रहते हैं। वनों और पर्वतों की गुफाओं में निवास करनेवाले जंगली मनुष्यों से लेकर सभ्यता के चूड़ान्त पर पहुँचे हुए योरप, अमेरिका, जर्मन आदि महाद्वीपों और राष्ट्रों के राजप्रासादों मे रहनेवाले शिक्षित और ऐश्वर्यशाली मनुष्यों तक मे पुष्पों का समान आदर होता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिलेगा, जो इन्हे धारण करने के लिए उत्सुक और उत्कंठित न हो।

पर्ण-कुटी से लेकर राज-भवन तक पुष्पो का समान आदर होता है। प्राचीन भारत के जब अभ्युदय और उत्कर्ष के दिन थे, उस समय तो इनका महान आदर और सत्कार होता था। किन्तु जब से देश परतंत्रता की शृङ्खला मे आवद्ध हो गया है, और यहाँ की श्री हत कर दी गई है तथा हम भारतीय अपने को उनका सगा-सम्वन्धी समझने लग गये हैं, तब से पुष्पों का प्रसार और व्यवहार पहले की अपेक्षा वहुत ही कम हो गया है। इतिहास प्रसिद्ध वात है कि जब विश्व-विजयी वीर सिकन्दर भारत से लौटकर वैवीलोन पहुँचकर मृत्युशय्या पर पड़ा, उस समय उसे भारत के सौन्दर्य और समृद्धि का स्मरण हो आया और उसने अपने सहकारी एवं मित्रों से भारत से कुछ अपूर्व उपहार लाने को कहा। उन उपहारो मे कमल का पुष्प भी उस विश्व-विजयी वीर के लिए अलौकिक था। वह भारत को कमलपुष्प का देश कहा

करता था। आज भी योरप, अमेरिका, जापान, चीन आदि
स्वतंत्र और अभ्युदय शील जातियों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आज
दरिद्रता के कारण हमारे देश में सब लोग इसका व्यवहार उस
ढंग से नहीं कर सकते, जैसा कि पाश्चात्य एव सुदूरवर्त्ती देश-वासी
करते हैं, तथापि अभी भी यहाँ पर इतनी प्रचुर मात्रा में यह व्यव-
हृत होता है कि सर्व साधारण इसका किसी-न-किसी रूप में उपयोग
करते ही हैं। मद्रास, बम्बई और बंगाल प्रान्तों में भारत के अन्य
प्रान्तों की अपेक्षा इसका व्यवहार अधिक पाया जाता है। स्त्रियाँ
और लड़के अधिकतर अपने शृङ्गार के लिए इनका उपयोग करते हैं।
यों तो पुष्पों का उपयोग विश्व के सभ्य और असभ्य सभी
समाज में होता है, परन्तु जितना पवित्र व्यवहार इसका हमारे
देश में होता है, उतना अन्य किसी भी राष्ट्र में नहीं होता। मह-
र्षियों ने इसे पापग्रह विनाशक भी कहा है। यह देव-पूजन, हवन
और अन्य मांगलिक कार्यों में अधिक उपयोग मे लाया जाता है।
देवार्चन में उनके प्रीत्यर्थ श्रद्धालु एव आस्तिक हिन्दू पुष्प की भेंट
चढ़ाते हैं और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि इसके द्वारा उनके देवी-देवता
इससे प्रसन्न होकर अभीष्ट फल की प्राप्ति देते हैं। जहाँ भारत में यह
पूज्य दृष्टि से देखा जाता है, वहाँ पाश्चात्य देशों में यह विलास की
सामग्री समझी जाती है। उनके स्नानागार, भोजनालय, शयनकक्ष
एव पुस्तकालय और बाग-बगीचों आदि व्यवहारोपयोगी प्रत्येक
स्थानों में पुष्पों के गुच्छे अथवा हरे-भरे गमले दीख पड़ते हैं।

पुष्पों के इस प्रकार के चयन से उनकी सौन्दर्य एवं शृंगार प्रियता तथा विलासिता का परिचय मिलता है।

हमारे यहाँ भी श्रीमन्तों के निवास कुंजों, बाग-बगीचो आदि में इसकी प्रचुरता दीख पड़ती है। हमारे आचार्यों ने भी इसे कामकारक और कामोद्दीपक माना है। वास्तव में शृंगार और शोभा के जितने पदार्थ हैं, उनमें से अधिकांश काम को उद्दीप्त करनेवाले हैं। परन्तु उन पदार्थों में पुष्प-जैसा काम को उद्वेलित करनेवाला अन्य पदार्थ नहीं है। पुष्प के द्वारा सब इन्द्रियाँ प्रफुल्लित हो उठती हैं। जिनके द्वारा बड़ी शीघ्रता के साथ काम जागृत हो उठता है एवं शरीर की शिथिलता क्षण भर में अन्तरिक्ष हो जाती है। विलासियों के लिए पुष्प पशुपत्यास्त्र है। स्त्री-पुरुष इसे धारण कर सरलता से एक-दूसरे को मदोन्मत्त कर सकते हैं। विहारोपवन के लिए इसकी उपयोगिता का ध्यान रखकर ही आचार्यों ने पुष्पों और सुन्दर लतिकाओं का विधान वर्णन किया है। कहा है—

> शय्यापल्लवपद्मपत्ररचिता वासो वयस्यै· सम।
> कान्तारेकुसुमस्फुरत्तरुवरेवीणान्वितं गायनं॥
> आलापाश्च शुकालिकोकिल कृताः कांताश्च कांता यथा।
> वाताश्चामलबालकव्यजनजा दार्घं निराकुर्वते॥—नोलिम्बराज

कदली या कमलपत्र की बनाई हुई शय्या, ऐसा वन जिसके वृक्षों पर फूल खिले हो, समवयस्क मित्र का समागम, वीणा-निनाद-रस-पूरित मधुर संगीत, शुक, भ्रमर एवं कोकिल आदि का मधुर

कलरव; सुन्दरी रमणियों का सहवास, प्रिय एवं रसभरी बातें; स्वच्छ, शीतल एवं मन्द-मन्द सुरभित पवन आदि काम के दाह को दूर कर हृदय को शान्ति पहुँचाते हैं।

विक च कमलगन्धैरन्धयन्भृंगमाला,
सुरभित मकरन्दं मन्दमावातिवात।
प्रवल मदनमाद्यनवयौवनोद्दाम रामा;
रमणारभस खेद स्वेदविच्छेद दक्ष॥—माघ

कमल की गन्ध, सुगन्धित पुष्पों का हार, मकरन्द सुरभित पवन, काम को उद्दीप्त करनेवाले हैं। एवं मकरन्द सुरभित मन्द-मन्द पवन रमण-श्रम-जनित खेद और स्वेद को भी दूर करने में परम दक्ष हैं।

पुष्प-धारण करने से ओज और श्री की भी वृद्धि होती है। किन्तु ओज और श्री के साथ-ही-साथ शोभा की भी वृद्धि होती है। पुष्प-धारण से शरीर की सप्तधातुएँ भी बढ़ती हैं। पुष्पों के स्पर्श से शरीर की त्वचा सुकोमल, मनोहर एव स्पर्श आह्लाददायिनी हो जाती है। अपनी रासायनिक क्रिया द्वारा पुष्प-स्पर्श शरीर में ओज और स्फूर्ति का सचरण करता है। पुष्प धारण करने से लोक मे मनुष्य पवित्र, पुण्यात्मा और देव-प्रिय समझा जाता है।

पर्वतोपत्यकाओं और घाटियों में कुछ ऐसी सुन्दर एवं अलौकिक वनस्पतियाँ भी हैं, जो तारामण्डल की भाँति इतना प्रचुर प्रकाश प्रसारित करती हैं, जिससे रजनी हत प्रभ हो तिमिराच्छन्न

सूर्यमण्डल की नाईं प्रतीत होती है। वह अद्भुत प्रकाश-राशि प्रकृति के अलौकिक पुष्पों से ही प्रकट होती है।

अत्यन्त तीव्र पवन भी पुष्पों की मदमाती गंध से शीतल, मंद और सुरभित होकर मानव हृदय में कामाग्नि धधका देता है। उस समय मदमत्त पवन का एक-एक थपेड़ा विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित करने में सोने में सुहागे का काम करता है। यदि पुष्प अपनी सुवास पवन को प्रदान न करें, तो निश्चय ही पवन मुकुट-विहीन राजाओं की भाँति राह का भिखारी बन जाय, तथा उसकी सम्पूर्ण चंचलता और सरसता ही नष्ट हो जाय एवं संसार के कवियों की एक बहुत बड़ी उपमा अनन्त में विलीन हो जाय।

पुष्पों की सर्वव्यापी उपयोगिता

पुष्प ही अनेक कीट-पतंगादिकों के जीवनाधार हैं। असंख्य कीट, पतंग, भ्रमर एवं मधुमक्खियाँ इन्हीं पुष्पों का पराग-पान कर जीवन-यापन करतीं और मनुष्य के लिए अति दुर्लभ अमृतमय "मधु" का संचयन करती हैं।

स्रष्टा ने पुष्पों में इतने अधिक गुण भर दिए हैं कि जिनका वर्णन करना असम्भव है। हमारे आयुर्वेदशास्त्र का एक बड़ा भाग पुष्पों के गुणावगुणों से भरा पड़ा है। पुष्पों के सम्पर्क, सहवास और आहार से मनुष्य के अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। पुष्पों

की गन्ध से चित्त प्रसन्न होता और मस्तिष्क में स्वच्छता, स्फूर्ति एवं दीप्ति का संचार होता है।

प्रातःकालीन शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु में घूमने से अनेक प्रकार के भयङ्कर रोगों से त्राण मिल जाता है। मकरन्द मिश्रित वायु का हृदय, यकृत और फेफड़ों पर उत्तम प्रभाव पड़ता है। इस वायु-द्वारा हमारे फेफड़े पुष्ट और शक्तिशाली हो जाते हैं। विशेषकर प्रातःकालीन पुष्पसुरभित पवन के सेवन से रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कुष्ट, वातरक्त और अनेक प्रकार के चर्मरोगों से निष्कृति मिल जाती है। उस समय का वायु अमृतोपम मानव-स्वास्थ्य-वर्द्धक है।

पुष्पों की सुगन्ध से हमारे स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष सहायता मिलती है। उनकी उग्र गन्ध से अनेक रोगोत्पादक कीटाणु या तो मर जाते हैं अथवा भाग जाते हैं, क्योंकि कीटाणुओं में पुष्प जैसी सुगन्ध के सहन करने की शक्ति नहीं है। वे तो उसी दुर्गन्ध के आदी हैं। साथ ही प्रकृति ने मनुष्य और कीटाणु की रचना में इतना अधिक अन्तर भी रख छोड़ा है। अस्तु! आजकल के अनेक विद्वानों ने पुष्प को प्रति दिन के भोज्य पदार्थ में व्यवहृत करने की सम्मति भी प्रदान की है। उनका विश्वास है कि प्रति दिन पुष्पों का खाद्य पदार्थों के साथ उपयोग होने से अनेक प्रकार के रोग अथवा विभिन्न प्रकार के विषाक्त कीटाणु; जो मनुष्य-शरीर में कुप्रभाव उत्पन्न किया करते हैं वे अपना कार्य करने में समर्थ न हो सकेंगे और काल पाकर विनष्ट भी हो जावेंगे। यदि यह कहा जाय कि पुष्प

समय में खाद्य पदार्थों मे पुष्पो का उपयोग नहीं होता था, तो यह केवल अपना मौर्ख्य-प्रदर्शन होगा। अनेक पुष्प हमारे प्रति दिन के शाक में सम्मिलित थे और हैं। तथा अनेक पुष्प औषधियों के काम आते हैं। पुष्प-सेवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे रक्त-शोधन का कार्य बड़ी सरलता और शीघ्रता के साथ करते हैं। साथ-ही उसे इतना हलका कर देते हैं कि उसके संचार मे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं प्रतीत होती और रक्त को अपना वर्ण भी प्रदान कर देते हैं, जिससे मनुष्य अनंग का प्रतिविम्ब दीखने लगता है।

शरीर में रक्त का यथा विधि परिभ्रमण होने से पाचन-क्रिया में अत्यधिक सहायता मिलती है। अनेक प्रकार के, आमाशय में होने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं। तथा आमाशय के अनेक सम्भाव्य रोग स्वयं विनष्ट हो जाते हैं। पुष्पों का सेवन मानव जीवन के लिए अत्युपयोगी है। वास्तव मे पुष्पों का त्याग अनुकरणीय है। पुष्पों को हमलोग मसलकर अथवा उनसे अपना अभीष्ट सिद्ध करके फेंक देते हैं, किन्तु वे अपने प्रकृत स्वभाव से उसका किंचित विचार न करके अपनी सुकुमारता और वर्ण तो अवश्य ही प्रदान कर जाते हैं।

गुलाब

स० शतपत्री, हि० गुलाब, व० गोलाप, म० गुलाबांचें फूल, गु० गुलाब, क० चेवडे, तै० गुलाबी पुवु, अ० वर्दअहमरनसरीन, फा० गुलसुर्ख, अँ० रोज़—Rose और लै० रोज़ासेंटिफोलिया—Rosa Centifolia

कितना सुकुमार, कितना सुन्दर और कैसा मनोहर गुलाब का फूल होता है कि उसे देखकर दुर्गीतर हृदय भी एकबार उसी की नाईं खिल उठता है, विकसित हो जाता है। वास्तव में गुलाब का त्याग अकथनीय है। हम चाहे उसे उबालकर अर्क निकालें, मिश्री के साथ घाम में पकाकर खा जायँ, मसलकर सौन्दर्यवर्द्धक 'स्नो' तैयार करें, किन्तु वह हर समय अपनी सुगन्ध और वह सुगन्ध जिसके लिए देवता भी तरसा करते हैं, हमारे लिए छोड़ जाता है। क्या हम मनुष्य भी इतनी दुर्दशा सहने के बाद अपने विरोधी पक्ष का किसी भी प्रकार का कल्याण करने के लिए उद्यत हो सकेंगे? नहीं, कभी नहीं। एक स्वर से सभी यह कहने को तैयार हो जायँगे।

गुलाब भारतवर्ष से लेकर योरप आदि अनेक विदेशीय राष्ट्रों मे भी पाया जाता है। यह कई प्रकार का होता है। उनमें सेवती और कूजा गुलाब वन-उपवन पुष्पवाटिका और अनेक विहार-कुंजों के पास पाया जाता है। सेवती की पँखुरियाँ सफेद होती हैं और यह गुलाबों में प्राचीन माना जाता है। गुलाब, लाल, पीला और

गुलाबी भेद से अनेक जाति का है। भारतवर्ष में पहले गुलाब नहीं होता था। अब भी अरब और तुर्किस्तान में गुलाब की बहुत सुन्दर खेती होती है। कूजा जाति का गुलाब भी सफेद होता है। किन्तु सेवती की अपेक्षा कूजा की गन्ध मन्द होती है। बारहमासी और चैती भेद से यह दो प्रकार का और भी होता है। बारहमासी गुलाब तो सदैव मिलता है, परन्तु अत्यल्प गन्धवाला होता है। चैती गुलाब केवल चैत और बैसाख मे ही मिलता है। यदि हम इसे पुष्पराज कहें तो अत्युक्ति न होगी। इसी चैती गुलाब का अर्क, मुरब्बा, शरबत और तैल बनाया जाता है। बाह, हाथरस और बिकानेर मे गुलाबो का जंगल है। औषध के लिए चैती गुलाब अत्यधिक उपयोगी है। बसन्त-ऋतु में जिसे गुलाब की मुलायम शय्या, सुन्दरी षोड़शी का आलिंगन, चन्दन और केसर का लेप एवं नदी का सुकूल मिले, वह पुरुष धन्य है।

शतपत्री हिमा तिक्ता कषाया कुष्ठनाशिनी।
मुखस्फोटहरा रुच्या सुरभि पित्तदाहनुत् ॥—भा० स०

गुलाब—शीतल, तिक्त, कषैला, कुष्ठनाशक, मुँहासों को हरनेवाला, रुचिकारक, सुगन्धित और पित्त तथा दाहनाशक है।

विरेचन के लिए—गुलकंद अथवा गुलाब के काढ़ा में मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। अथवा गुलाब का फूल रात के समय जल के साथ भिगो देना, प्रातःकाल छानकर उसमें शक्कर मिलाकर पी जाना चाहिए। यह पित्तप्रकृतिवालों के लिए विशेष उपयोगी है।

पित्तशान्ति के लिए—गुलाब का शरबत शीतल जल में मिलाकर पीना चाहिए।

आँख की बीमारी में—गुलाबजल में गुलाबी फिटकिरी भूनकर मिला दें और छानकर आँख में छोड़े। इससे पित्तविकार-युक्त आँखों की जलन अथवा उनका आना शान्त हो जाता है।

प्रदर में—प्रतिदिन प्रातःकाल पाँच गुलाब और मिश्री खा कर ऊपर से धारोष्ण दूध पीना चाहिए। इससे धातु-विकार, रक्तार्श, पित्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, रक्त की न्यूनता, शरीर का पीलापन आदि दूर होता है।

त्वचारोग में—गुलाब का फूल और मिश्री अथवा गुलकन्द खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिए। इससे खुजली, दाद, चर्म-रोगादिक नष्ट हो जाते हैं।

आँख की बीमारी में—गुलाबजल में सुरमा इक्कीस दिनों तक भिगोकर निकाल लें। बाद उसमें इक्कीस भावना गुलाबजल की देकर आँख में लगाएँ। इससे आँख की गरमी निकल जाती है और शीतलता के साथ-ही-साथ नेत्रों की ज्योति भी बढ़ जाती है।

मालती

स० हि० ब० म० गु० मालती और लै० एकाइटिस केरिफिल्लिटा—Echites Caryophyllita

वास्तव में मालती का फूल बड़ी मस्ती लाता है। इसे संस्कृत मे सुमना भी कहते हैं। 'सुमना' कितना सुन्दर नाम है। इसका एक नाम युवती भी बहुत ही भावपूर्ण है। इसकी आनन्ददायिनी सुमधुर सुगन्ध का रसास्वादन कर मन-मयूर अनायास ही नृत्य करने लग जाता है। सर्प मधुर गन्ध का उद्भट प्रेमी है। इसीलिए जिस स्थान पर मालती की लता होती है, वहाँ सर्प प्रचुरमात्रा में निवास करते हैं। इसीलिए प्राय. गृहस्थलोग निवास-कानन में मालती की लता नहीं लगाते। इसकी मधुर गन्ध उन्हे प्राणो से भी अधिक प्यारी है। हेमन्त और शिशिर मे इसकी कलियाँ विकसित होती हैं। उस समय इसे धारण कर नवयुवक और नवयुवतियाँ जीवन-सर्वस्व मदनाग्नि से भस्मीभूत होने लगते हैं। अपने आपको भूल जाते हैं।

इसकी लता बड़ी, किन्तु कोमल होती है। पत्ते लम्बे-लम्बे और जीवन्ती-पत्र सदृश होते हैं। यह लगाने से दो-ढाई वर्ष बाद फूल देने लगती है। जहाँ पर इसकी लता लगी होती है और झुण्ड-की-झुण्ड होती है वहाँ के निवासी को धन्य समझना चाहिए। हेमन्त-ऋतु में मालती का उद्यान; 'श्यामा' का आलिंगन, चन्दन,

केसर और मृगमद का लेपन तथा मालती-माला का धारण नपुसकों में भी पुसत्व का प्रादुर्भाव कर देता है।

मालती कफपित्तास्यरुग्व्रणक्रिमिकुष्ठजित्।
चक्षुष्य कुसुम तस्या॰ पत्रं तत्कफपित्तजित् ॥—रा॰ व॰

मालती—कफ, पित्त, मुखरोग, व्रण, कृमि और कुष्ठनाशक है। इसके फूल नेत्रों को हितकारी हैं तथा पत्र—कफ एवं पित्त-नाशक है।

शोथरोग में—मालती के पत्तों का काढ़ा बनाकर पीना चाहिए।

कान की बीमारी में—मालती की पत्ती का रस छोड़ना चाहिए।

घाव में—मालती की पत्ती की राख छोड़नी चाहिए। यदि कीड़े पड़ गए हों तो इसकी पत्ती का रस छोड़ना चाहिए।

पित्तशान्ति के लिए—मालती का पुष्प धारण करना चाहिए।

आँख की बीमारी में—मालती का फूल पीसकर लगाना चाहिए।

गलितकुष्ठ में—मालती का पचाग जलाकर अलसी के तेल के साथ मिलाकर लगाना चाहिए।

वमन के लिए—मालती के पंचाग का रस पीना चाहिए।

चमेली

स० उपजाति, हि० चमेली, व० चामेली, गु० चंबेली, क० मोगराचाभेद्, अ० यासमन, फा० यासमीन, अँ० स्पनिश जस्मिन—Spanish Jasmine और लै० जेस्मिनं ग्रान्डिफ्लोरें—Jasminumgrandiflorum

प्रकृति की सृष्टि में चमेली भी कितनी अपूर्व एवं सुन्दर वस्तु है। वर्षाऋतु में चमेली का पुष्प कितना आह्लाददायक होता है, इसकी कल्पना और आनन्द उस ऋतु मे इसका पुष्पधारण करके ही लिया जा सकता है। उस आह्लाद की सुमधुर कल्पना भी नहीं की जा सकती। धन्य है, हमारी प्रकृति और उससे भी धन्य है, उसकी सौन्दर्योपासना ! जिसने हमारे उपभोग के लिए इतनी सुन्दर वस्तु का निर्माण किया। चमेली की वेल वन-उपवन, पुष्प-वाटिका एवं दृश्य-उपवन में विशेष रूप से पाई जाती है। इसकी कली कुछ मोटी तथा कुछ लम्बी होती है, किन्तु उसके नीचे की डंठी अधिक लम्बी होती है। इसका रंग श्वेत होता है। डंठी का वर्ण हरित होता है। परन्तु कली का मुख कुछ लाली लिए होता है। इसकी सुमधुर गन्ध अतीव मनोमोहक होती है। यह वर्षा-ऋतु में और विशेषकर श्रावण के मास मे विकसित होती है। श्रावण की सन्ध्या, चमेली का उद्यान और रिम-झिम मेघ अत्यन्त उल्लासदायक हैं।

इसकी पुरानी लता इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसके सहारे

बराबर आदमी चढ़ सकता है। इसकी पत्तियाँ श्वेततायुक्त सुकुमार और सुमधुर गन्ध मिश्रित होती हैं। उनका आकार प्राय. जुही की पत्तियों से मिलता-जुलता होता है। इसका उपयोग सब स्थानों में होता है। आजकल विदेश में इसका सेंट बनता है, जो कि प्राय उसके पुष्प से कम भारतवर्ष में नहीं खपता। इस प्रकार प्रचुरमात्रा में यहाँ का धन विदेश चला जाता है। प्राचीन समय में इसका पुष्प और तिल एक साथ मिट्टी के वर्त्तन में रखते थे, और कुछ समय बाद तिल का तेल निकलवाते थे। वह तेल आजकल के चमेली के तेल से कहीं अधिक गुणदायक होता था। स्थान विशेष में अभी भी इसी प्रकार इस का तेल निकालते हैं। इस प्रकार का बनाया हुआ तेल शिरोवेदना के लिए अतीव गुणकारी कहा गया है। वास्तव में वर्षा-ऋतु में केवल इस पुष्प का साथ मिल जाने से मनुष्य अपने को भूल जाता है। किन्तु मालती-जैसी मादकता चमेली में नहीं है। किन्तु सुगन्ध की दृष्टि से चमेली मालती से किसी प्रकार न्यून नहीं कही जा सकती, क्योंकि दोनों के ऋतु में भी बड़ा अन्तर है।

चम्बेली तुवरा तिक्ता व्रणकुष्ठविपास्रजित्।
शिरोक्षिमुखदन्तार्तिहरा त्वग्दोपनाशिनी॥ —शा० नि०

चमेली—कषैली, तीती तथा व्रण, कुष्ठ, विष, रक्तविकार, शिरोरोग, नेत्ररोग, मुखदोप, दन्त-पीड़ा और त्वचादोषनाशक है।

दाद में—चमेली की जड़ घिसकर लगाना चाहिए।

मुखरोग में—चमेली की पत्ती कूचकर थूकना चाहिए। अथवा चमेली की पत्ती, फिटकिरी, छोटी इलायची, खैर और सीतलचीनी का काढ़ा कर कुल्ला करना चाहिए। यह दूसरा प्रयोग मुख के सम्पूर्ण व्रणों एवं मुखपाक के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

घाव में—चमेली की पत्ती पीस कर और गरम करके बाँधनी चाहिए।

कान की बीमारी में—सात बार चमेली की पत्ती के रस के साथ पकाया हुआ तिल का तेल छोड़ना चाहिए।

वमन के लिए—चमेली की पत्ती के दो तोले रस में सोंठ, मिर्च, पीपर और मिश्री क्रम से एक-एक माशा छोड़ कर पीना चाहिए।

ज्वर में—यदि जीर्ण ज्वर हो तो चमेली के जड़ का काढ़ा पीना चाहिए।

गरमी में—चमेली की मुलायम पत्ती के दो तोले रस में दो तोले गाय का घी और दो माशे राल मिला कर प्रतिदिन प्रातः-काल सेवन करना चाहिए। यह उपदंश रोग के लिए अतीव गुणकारी सिद्ध हुई है।

बेला

सं० वार्षिकी, हि० वेला, व० वेलफुल गाछ, म० मोगरी, गु० वेल्य, क० वल्लिमल्लिगे, तै० मल्लिपुष्पालु और लै० जस्मिनम् पुबिसेन्स—Jasminum Pubsens.

कैसा मनोहर नाम है। इस नाम से किसी प्रेमिका अथवा किसी सुन्दरी को सम्बोधित करते बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। यह भी चमेली से मिलता हुआ पुष्प है, किन्तु इसकी सुगन्ध उसकी अपेक्षा अधिक स्थाई होती है। इस प्रकार के नाम आजकल जिन स्त्रियों के पाए जाते हैं, उनमें वास्तविक दोष नाम रखनेवालों का है। विना समझे-बूझे और गुण तथा रूप का विचार किए ही नाम रख देते हैं। यदि किंचिन्मात्र विचार करके विवेकबुद्धि से काम लिया जाय, तो जिसे इस नाम से किसी प्रेयसी को सम्बोधन करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय, वह अपने को धन्य समझे। चमेली की अपेक्षा इसका पुष्प भी दृढ़ होता है। यह मोतिया, घुघुर मोतिया, वनमोगरा और मोगरा जाति भेद से चार प्रकार का और होता है। श्रावण-भाद्रपद के महीनों में जिस समय इसकी कली पर रिम-झिम मेघ के विन्दु-कण पड़े रहते हैं, उस समय मुक्ता-सदृश वे विन्दुभाग अतीव मनोहर दृष्टिगोचर होते हैं। यदि कहीं प्रात काल मेघाच्छन्न हो और मन्द-समीर अपना हलका थपेड़ा लगाकर हृदय की सुसुप्त भावनाओं को जगा रहा हो और दैववश बेला-वाटिका में ही निवास करना पड़े, तो इससे बढ़कर दूसरा स्थान भी आनन्द दायक हो सकता है? इसकी कल्पना केवल कल्पना मात्र है। और यदि कहीं चन्द्रवदनी, सुयौवना षोड़शी वीणा के सहारे मृदुस्वर में भैरवी की सुकोमल तान ले रही हो और द्राक्षारस की प्याली होठों का स्पर्श कर रही हो, तो इसकी कल्पना भी नहीं की

जा सकती। वास्तव मे इस सुख की तुलना स्वर्ग सुख से भी नहीं की जा सकती। उस व्यक्ति का जन्म इस मर्त्यलोक में धन्य है, जिसने अपने सुयौवनकाल मे इस आनन्द का उपभोग किया है।

वेला की पत्ती वेर की पत्ती की अपेक्षा कुछ छोटी होती है। किन्तु इसमें रेखाएँ भी उसकी अपेक्षा अधिक होती हैं। फूल अत्यन्त सुगन्धित और श्वेतवर्ण का होता है। वेला की अपेक्षा मोतिया जाति का फूल अधिक गोल होता है। मोगरा का फूल कम गोल होता है। अर्थात् कुछ लम्बा होता है। जो एक ही डंठल मे झूमक के रूपवाला अनेक होता है, उसे मोतिया कहते हैं। मोतिया की पंखुरियाँ एक-पर-एक होती हैं। वेला झूमक के रूप मे नहीं होता तथा एक फूल में केवल पाँच पंखुरियाँ ही होती हैं। मोतिया की झाड़ वड़ी होती है। इसकी कलम लगाते हैं। कई वार का कलम किया हुआ मोतिया वड़ा, अधिक सुगन्धवाला और दृढ़ वृक्ष का होता है; और ऊँचाई में भी अधिक होता है। वेला का फूल अधिक कोमल होता है, इसलिए वह अधिक प्रसिद्ध है, और मोतिया अनेक विशिष्ट गुणयुक्त होते हुए भी कठोरता की आभा से आच्छादित होने के कारण उतनी अधिक ख्याति नहीं प्राप्त कर सका। घुघुरमोतिया मोतिया की अपेक्षा वीच मे कुछ उठा हुआ होता है। मोतिया की अपेक्षा इसकी कली कुछ समय वाद विकसित होती है। वेला और मोतिया ये दोही जातियाँ विशेष रूप से व्यवहृत होती हैं।

वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयापहा ।
कर्णाक्षिमुखरोगघ्नी तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् ॥

वेला—शीतल, हलका, तीता तथा वात, पित्त, कफ एवं कर्ण, नेत्र और मुखरोग नाशक है। इसका तेल भी इसी गुणवाला है।

मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत् ।
वातपित्तास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान् ॥—रा० नि०

मोतिया—गरम, हलका, वृष्य, तिक्त, चरपरा तथा वात, पित्त, नेत्ररोग, कुष्ट, अरुचि, विष और व्रणनाशक है।

शरीर पीड़ा में—वेला के तेल की मालिश करनी चाहिए।

उदर-विकार में—वेला के पंचाग का चूर्ण गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए।

घाव में—यदि कीड़े पड़ गए हों तो मोतिया की पत्ती का रस छोड़ना चाहिए।

विष में—यदि किसी प्रकार का विष खा गया हो, तो मोतिया की पत्ती के रस में सेंधानमक मिलाकर पीना चाहिए। इससे विष नष्ट हो जाता है।

कोढ़ में—वेला या मोतिया की जड़ घिसकर लगानी चाहिए।

वात विकार में—मोतिया घी के साथ भूनकर तथा सम-भाग मिश्री मिलाकर गरम पानी के साथ सेवन करना चाहिए। घी अधिक खाना चाहिए।

पित्तशान्ति के लिए—वेला के पुष्पों का अधिक उपयोग करना चाहिए।

नेवारी

सं० वासन्ती, हि० नेवारी, ब० नेवाली, म० नेवाली, गु० नेवरी, क० विरवन्तिगे और लै० इक्सोरा पार्विफ्लोरा—Ixora Parviflora.

यह पुष्प छोटा-छोटा पाँच फाँक या पाँच पँखुरियोंवाला होता है। इसकी बड़ी मन्द गन्ध होती है। कुआर के महीने में इसका फूल मिलता है। इसकी भीनी गन्ध बड़ी ही प्रिय प्रतीत होती है। श्रावणी के समय यह अधिक मिलता है। इसे देखने और धारण करने से धार्मिक भावों का उदय होता है। नेवारी के वृक्ष बड़े-बड़े और विशेषकर वन-उपवनों में पाए जाते हैं। इसके पत्ते लम्बे एवं कुछ गोल होते हैं। इसके फूल गुच्छों में आते हैं। इसकी लता जुही की लता के समान होती है। इसके पत्ते जुही की पत्तियों से मिलते हुए होते हैं। इसीको वासन्ती भी कहते हैं। कोई-कोई इसे नेपाली मोतिया भी कहते हैं।

नेपाली कटुका तिक्ता शीता च सुरभिर्लघुः ;
त्रिदोषनेत्ररोगघ्नी कर्णाननरुजापहा।
सर्वरोगहरा प्रोक्ता गुणज्ञैः पूर्वकोविदैः ॥—शा० नि०

नेवारी—कड़वी, तीती, शीतल, सुगन्धित, हलकी तथा त्रिदोष, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुख-विकार एवं सर्वरोगनाशक कही गई है।

मूत्र-विकार में—नेवारी का बीज शीतल जल के साथ पीस कर पीने से मूत्राघातरोग नष्ट होता है।

शिरोवेदना में—यदि पित्तज शिरोवेदना हो तो नेवारी का फूल या पत्ती पीसकर लेप करना चाहिए।

कान की बीमारी में—नेवारी की पत्ती का रस गरम करके छोड़ने से 'पूतिकर्ण' रोग नष्ट हो जाता है। साधारण वातजन्य शूल में भी इससे लाभ होता है।

चम्पा

स० चम्पक, हि० चम्पा, व० चांपा, म० चांफा, गु० चम्पो, क० संपगे, ता० चवकं, तै० चंपागी और लै० मिचेलिया चम्पेका—Michelia Champaca.

इस नाम में इतनी मनोहरता क्यों है? नाम लेते ही उसके गुणों का ध्यान करके हृदय मे एक हलकी-सी अव्यक्त वेदना होने लग जाती है। वेदना ही हमारी चिरजीवन संगिनी है। फिर चम्पा हमें क्यों न मतवाला बना देगी। जितनी मादकता इस पुष्प के नाम में है, उतनी अन्य किसी में नहीं है। वह पुरुष धन्य है, जिसे इन गुणों से परिपूर्ण प्रेयसी का नाम अहर्निश जिह्वाग्र रहता है। और आलिङ्गनादिक क्रियाएँ करने का सौभाग्य प्राप्त है। वास्तव मे यह पुष्प है भी बड़ा सुन्दर।

चम्पा पाँच जाति का होता है। सफेद चम्पा, नाग चम्पा, सुलतान चम्पा, नील चम्पा और भुइं चम्पा। सफेद चम्पा का वृक्ष भारतवर्ष के अनेक प्रान्तो मे पाया जाता है। इसके पत्ते लम्बे और फूल सफेद होता है। इसका वृक्ष वहुत वड़ा होता है। इस चम्पा का स्वरस इतना तीक्ष्ण होता है कि त्वचा में स्पर्शमात्र से छाले पड़ जाते हैं। इसके फूल का शाक भी वनाया जाता है। इसकी पत्ती तोड़ने से उसकी जड़ में से दूध निकलता है।

नाग चम्पा का वृक्ष वड़ा होता है। इसके पत्ते रामफल के पत्ते के समान होते हैं। इसका फूल पीले रंग का होता है। इसकी गंध अत्युग्र होती है। यह वोए जाने के आठ-दस वर्ष वाद फूलता है। इसमें एक वर्ष में दो वार पुष्प आते हैं। ग्रीष्म और वर्षा ये दो ऋतुएँ इसके पुष्पित होने की हैं। किन्तु दोनों ऋतुओं मे यह कुछ गिने-गिनाए दिनों ही में मिलता है। हाँ, वर्षा ऋतु में जल पाकर वहुत सुन्दर हो जाता है। उस समय इसकी मद-मत्त सुगन्ध वड़ी ही आह्लाद-दायक होती है। प्रातः अथवा सायं जिस समय मेघ वरस कर निकल जाते हैं और पुन' चारो ओर से घिरने लगते हैं, मन्द-मन्द समीर चलने लगता है, कोयल अपनी विरह-गाथा का कुहू-कुहू सुमधुर गान आलापने लगती है, और उस समीर का थपेड़ा खाकर चम्पा का वृक्ष झूमता हुआ समीर को अपना सौरभ-समर्पित करने लगता है, उस समय के आनन्द की तुलना के लिए क्या विधि ने किसी अन्य की सृष्टि की है? नहीं। चम्पा का पुष्प देखने में

अत्यन्त मनोहर होता है। अन्य पुष्पों की अपेक्षा इसमें एक विशिष्ट गुण यह है कि यह दूषित वायु को अपना सौरभ प्रदान कर अति शीघ्र समीर का दूषित तत्व विलग कर देता है। इसके फूलों में खटमलों को भगा देने की एक अपूर्व शक्ति है। भ्रमर बड़ा ही सुगन्ध प्रिय जन्तु है; किन्तु वह भी इसकी उग्र गन्ध के आगे पलायमान हो जाता है। इसी प्रकार अनेकानेक विषाक्त कीट-पतंगादिक भी भाग जाते हैं। मानव हृदय को भी इसकी गन्ध अत्यधिक प्रिय है।

सुलतान चम्पा और नील चम्पा का वृक्ष मध्यमाकार होता है। इसके पत्ते भी रामफल के पत्ते के सदृश होते हैं। इनका फूल किञ्चित नीलाभ होता है; किन्तु नील चम्पा की अपेक्षा सुलतान चम्पा अत्युग्र गन्धयुक्त होता है। इन दोनों के पुष्प को ही नागकेशर कहते हैं। इन दोनों में भी सुलतान चम्पावाला नागकेशर अत्युत्तम माना गया है।

भुइं चम्पा का पुष्प इस प्रकार निकलता है, मानों पृथ्वी से ही प्रादुर्भूत हुआ है। इसकी पत्ती गुलाबाँस के पत्ता के समान होता है। फूल भी सफेद होता है। इसकी सुगन्ध भी गुलाबाँस से मिलती-जुलती हुई होती है।

श्वेतस्तु चम्पकः प्रोक्तः सतिक्तः कटुः स्मृतः।
तुवरोष्णः कुष्ठकण्डूव्रणशूलकफापहः॥
वातं चोदररोगं च आध्मानं चैव नाशयेत्।

नागनामा चम्पकस्तु वर्ण्यं चोष्णः कटुः स्मृत ॥
व्रणरोपणकारी च चक्षुष्य. कफवातहा ।
वस्त्वंतरस्य संयोगादग्निस्तम्भकरो मतः ॥
भूमिजश्चम्पकश्चोष्ण. कटुः शोथरुजापहः ।
गलगण्डं व्रणं चैव नाशयेदिति कीर्त्तितम् ॥—नि० र०

सफेद चम्पा—सारक, कड़वा, चरपरा, कपैला, गरम तथा कुष्ठ, खुजली, व्रण, शूल, कफ, वात, उदर-रोग और आध्मान नाशक है। **नाग चम्पा**—वर्णवर्द्धक, गरम, कड़वा, व्रणरोपक, चक्षुष्य और कफ वातनाशक है। अन्य वस्तुओ के संयोग से अग्नि को मन्द करनेवाला भी है। **भुइं चम्पा**—गरम, कड़वा तथा शोथ, वातज पीड़ा, गलगण्ड और व्रणनाशक है।

गुदभ्रंश रोग में—चम्पा का रस लगाना तथा उसीसे सेंकना चाहिए। यह वातज गुदभ्रंश रोग मे विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

फोड़ा में—यदि फोड़ा बैठाना अभीष्ट हो तो चम्पा का दूध लगाना चाहिए।

सर्पदंश में—चम्पा का अंकुर पीसकर पिलाना चाहिए। यदि ताजा अकुर न मिल सके, तो सूखा अंकुर ही दूध के साथ काम में लाया जा सकता है।

विरेचन के लिए—चम्पा की छाल और आदी का रस समभाग पीना चाहिए।

ज्वर में—यदि जाड़ा देकर ज्वर आता हो तो चम्पा की

एक कली डंठी समेत लेकर थोड़ी-थोड़ी तीन बीड़ा पान में छोड़ कर तैयार करे और ज्वर आने से तीन घड़ी पहले एक-एक घड़ी के अन्तर में तीनों बीड़ा पान खा जावे।

सर्पदंश में—चम्पा की छाल और बेल की छाल का समान भाग रस आध सेर तक पीना चाहिए। अन्य किसी भी औषधि के योग से विष शीघ्र नष्ट हो जाता है।

खुजली में—चम्पा का दूध और चन्दन का तेल एक साथ घोटकर लगाना चाहिए।

प्रदर में—पीले चम्पा के छाल का रस अथवा उसका काढ़ा बनाकर पीना चाहिए।

ज्वर में—सब प्रकार के ज्वर में चम्पा की छाल का काढ़ा बनाकर पीना चाहिए।

जुही

स० यूथिका, हि० जुही, ब० जुई, म० जुई, गु० जुइ, क० यरडुमोल्ले, तै० जुइपुष्पालु और लै० जस्मिनं ओरिकुलेटम्—Jasminum Auriculatum

वास्तव में जितने पुष्पों का वर्णन अबतक हो चुका है, उन सब में सबसे अधिक कोमल जुही का ही फूल होता है। इसकी भीनी सुगन्ध और कोमलता—दोनों ही अपूर्व होते हैं। वास्तव में इसकी सुकुमारता की सीमा नहीं है। श्रावण के महीने में जहाँ थोड़ा भी पानी

पड़ा की तुरत यह खिल जाती है। उसके वाद वारह घंटे तक तो इसकी दशा ठीक रहती है; किन्तु इतने समय तक भी यह उसी दशा में रह सकती है; जव कि इसे चुनकर किसी वॉस की डाली में थोड़ी मात्रा मे खुली जगह मे रहने दिया जाय। अन्यथा यह त्वरा पूर्वक नष्ट-विनष्ट हो जाती है। वर्षा-ऋतु मे इसका हार वड़ा मनोहर और आह्लाददायक प्रतीत होता है। चन्दन-केशर का लेपन, जुही का हार और जुही का उद्यान सन्त-हृदय में भी विरहाग्नि प्रदीप्त कर देते हैं। किन्तु इसमे स्पर्श सौकुमार्य के साथ-ही-साथ गन्ध कौमल्य भी अपूर्व है। इसके हार के समक्ष वेला, मालती और चमेली का हार तुच्छ प्रतीत होगा। कोमल मस्तिष्क के लिए जुही से वढ़कर दूसरा पुष्प नहीं है। यह अपनी सुकुमार सुगन्ध के ही कारण प्रत्येक के हृदय का हार वन गई है।

जुही की वेल वन-उपवन और पुष्प-वाटिकाओ में पाई जाती है। इसका पेड़ छतनार फैला हुआ होता है। इसके पेड़ में त्रिदल पत्र लगते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक की पंखुरी सफेद और डंठी हरी होती है। इसकी छोटी-छोटी कलियाँ होती हैं। इसका पुष्प विकसित होकर भी छोटा ही होता है। दूसरे प्रकारवाले का पुष्प पीतवर्ण का होता है। इसकी डंठी जड़ में किंचित मोटी और हरी होती है। फूल इसका अधिक वड़ा होता है। उसकी अपेक्षा इसकी गंध अधिक उग्र होती है। देखने मे यह अधिक सुन्दर होती है। दूसरे प्रकार वाली का सेंट वनता है। किन्तु वह सुगन्ध का माधुर्य

इसमें कहाँ ? उस पहले प्रकार वाली जुही को तो सुगन्ध एवं सुकुमारता की साम्राज्ञी कहना किसी प्रकार अत्युक्ति न होगी।

यूथिकायुगलं स्वादु शिशिर शर्करार्तिनुत्।
पित्तदाहतृपाहारि नानात्वग्दोपनाशनम्॥
सर्वासां यूथिकाना तु रसवीर्यादि साम्यता।
सुरूप च सुगन्धाढ्य च स्वर्णयूथ्या विशेपत ॥—रा० नि०

दोनों प्रकार की जुही—स्वादिष्ट, शीतल, शर्करादोपनाशक तथा पित्त, दाह, तृपा और नाना प्रकार के त्वचा रोग को भी नष्ट करनेवाली है। सब प्रकार की जुहियों में रस, वीर्य और विपाक की साम्यता कही गई है। वर्ण और सुगन्ध में पीली जुही विशेप है।

प्रमेह में—सिकतामेह और मधुमेह में जुही के पचाग का चूर्ण शीतल जल के साथ सेवन करना चाहिए।

पित्त शान्ति के लिए—जुही की माला पहननी चाहिए।

खुजली में—पीली जुही का डठल पीसकर लगाना चाहिए।

प्यास में—यदि प्यास अधिक लगती हो तो तालू पर जुही पीसकर रखनी चाहिए।

चेचक में—नीम और जुही का व्यवहार अधिक करना चाहिए।

माधवी

स० हि० माधवी, ब० माधवीलता, म० पीतवेल, गु० माधवी-लता, क० इन्दुगोचे, तै० माधवतोवी, अँ० क्लस्टर्ड हिप्टेज—Clustered Hiptage और लै० हिप्टेज मेडेब्लोटा—Hiptage Madablota.

माधवी को यदि चम्पा का ही भेद विशेष कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। माधवी का पुष्प अपनी कोई विशेषता न होने के कारण अधिक ख्याति न पा सका। केवल भेद-उपभेद मे ही पड़ा-पड़ा टक्कर खा रहा है। इसका पेड़, पत्ता और पुष्प सभी चम्पा के समान अथवा उससे मिलते-जुलते होते हैं। फूल गुच्छो में आते हैं। चम्पा की अपेक्षा इसकी सुगन्ध मे कुछ मिठास होती है। साधारणतः इसका पुष्प भी अच्छा होता है। यह वर्षा-ऋतु मे होता है। माधवी से भ्रमर अधिक प्रेम करते हैं। इसका पुष्प न तो अधिक बड़ा होता है और न अधिक छोटा ही, बल्कि कुछ पीताभ होता है। पुष्प की डंठी थोड़ा हरापन लिए लालिमायुक्त होती है।

माधवी कटुका तिक्ता कषाया मदगन्धिका।
पित्तकासव्रणान् हन्ति दाहशोष विनाशिनी ॥—नि० र०

माधवी—कड़वी, तीती, कसैली, मदगन्धयुक्त तथा पित्त, कास, व्रण, दाह और शोथनाशक है।

क्षयरोग में—माधवी की माला पहननी चाहिए।

दाह में—माधवी-पुष्प-निर्मित शय्या पर शयन करना चाहिए।
विसर्परोग में—माधवी के पंचाग का काढ़ा पीना चाहिए।

वकुल

सं० वकुल, हिं० वकुल, मौलसिरी, बं० वकुलगाछ, म० वकुल, गु० बोलसिरी, क० करक, ता० मोगदम, तै० पावडा, अँ० सुरीनम मेडिकर—Surinam Medicar और लै० मिमुसोप्स इलेंज—Mimusops Eleng.

मौलसिरी का फूल मधुर गन्धयुक्त होता है। मौलसिरी के वृक्ष वन-उपवनादिकों में विशेष होते हैं। इसके पत्ते बड़ी जामुन के पत्ते के समान होते हैं। किन्तु आम के पत्ते से भी कुछ मिलते-जुलते होते हैं। इसका फूल छोटा, सफेद और चक्राकृति का होता है। उसके मध्य में छिद्र होता है। इसके फूल की गन्ध मधुर होती है। सूख जाने पर भी वह सुगन्ध में जस-का-तस रहता है। किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता। इसका फल बादाम की भाँति होता है। पकने पर वह लाल रंग का हो जाता है, और स्वाद में खट्टा होता है। अतएव लोग इसे बहुत कम खाते हैं। इसके पुष्प की गन्ध में दूपित वायु को शुद्ध करने की एक विशेष शक्ति होती है। इसका इत्र भी बनाया जाता है। यह मादा जाति की मौलसिरी है।

दूसरे प्रकारवाले में फल नहीं आते। उसका फूल बड़ा होता

है । इसका रंग सफेदी और लाली लिए सिंदूरिया रंग का होता है । इसके फूल का अर्क भी बनाया जाता है। यह नर जाति का मौलसिरा कहा जाता है ।

किन्तु दोनो मे केवल यही अन्तर है कि नर जाति मे फल नहीं आते और मादा जाति में फल आते हैं । अन्यथा दोनों के उपयोग में कोई विशेष अन्तर नहीं है । नर और मादा जाति का विचार रोगी की चिकित्सा के समय विशेष करना चाहिए । मौलसिरी स्त्री के लिए और मौलसिरा पुरुष के लिए अधिक उपयोगी हैं, क्योंकि मौलसिरी का जो फल है, वह रज रूप मे बाहर आ गया है। ऐसा वर्गीकरण अन्य पुष्पों मे प्राय. कम पाया जाता है। यो तो कुछ-न-कुछ अन्तर नर-मादा का सभी में मिल जाता है। तथापि कुछ पुष्प तो केवल एकही जाति के होते हैं और कुछ में इतना सूक्ष्मतर अन्तर होता है कि वह स्पष्ट रूप से सर्व साधारण के लिए बोधगम्य नहीं है ।

मौलसिरी के पेड़ की लकड़ी बड़ी पुष्ट होती है। किन्तु गृह-निर्माण के काम नहीं आती । उसका उपयोग समुद्र में रहनेवाली चीजों में विशेष होता है ।

वकुलज कुसुमं रुच्यं क्षीराढ्यं सुरभिर्शीतलं मधु' ।
स्निग्धं कषायं कथित तथैव मलसंग्रहकारकम् ॥—रा०नि०

मौलसिरी का फूल—रुचिकारक, अधिक दुग्धवाला, सुगन्धित, शीतल, मधुर, चिकना, कषैला और मलवर्द्धक है ।

अतीसार में—बकुल का बीज शीतल जल के साथ पीसकर पीना चाहिए।

दन्तरोग में—बकुल की छाल चबाना चाहिए।

हृद्रोग में—बकुल के फूल का हार पहनना, सूँघना और इसकी अन्तरछाल का काढ़ा पीना चाहिए।

वातुविकार में—बकुल का ताजा फूल एक तोला, बादाम और मिश्री तीन-तीन माशे प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल खाकर ऊपर से शीतल जल पीना चाहिए। इससे प्रदर, प्रमेह एवं अन्य सभी प्रकार के वातु-विकार नष्ट हो जाते हैं। दन्त-रोग में भी इससे लाभ होता है।

बालरोग में—यदि बालक को पित्तविकार हो तो बकुल का ताजा फूल तीन माशे, दो तोले शीतल जल के साथ मिट्टी के पात्र में रात के समय भिगा देना और प्रातःकाल उसे छानकर और थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए।

शिरोरोग में—यदि सिर-दर्द हो तो बकुल के सूखे फल के चूर्ण की नस्य लेनी चाहिए, और पुष्प पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए।
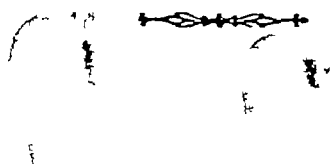
मुचुकुन्द

स० हि० मुचुकुन्द, व० म० गु० क० मुचकुन्द, [illegible]; तै० लोलगु और लै० टेरोस्परमम् सुबेरीफोलियम्—Pterosp-erumum Suberifolium

मुचुकुन्द का पुष्प देखने मे तो प्रिय प्रतीत होता है, किन्तु इसका उपयोग सार्वजनिक नहीं है। इसका पेड़ बड़ा होता है। इसके पत्ते पलाश के पत्ते-जैसे किन्तु बड़े-बड़े होते हैं। उनका रंग अखरोट के पत्ते से मिलता-जुलता होता है। इसमें बेंत-जैसा लम्बा फल निकलता है। इसका पुष्प पीतवर्ण का होता है। पलाश के पुष्प की भाँति निर्गन्ध तो नहीं होता, किन्तु सुगन्ध साधारण होती है। प्रत्येक पुष्प में चार-चार पखुंरियाँ होती हैं। इसका फल अति कठोर होता है। इसकी लकड़ी मजबूत तो होती है; किन्तु गृह-निर्माण में काम नहीं आती। औषध में केवल इसका पुष्प ही प्रयुक्त होता है।

> मुचुकुन्द· कटुस्तिक्त कफकासहरश्च कण्ठदोषघ्न ।
> त्वग्दोषशोफशमनो व्रणपामाविनाशकश्च यः ॥—शा० नि०

मुचुकुन्द—कड़वा, तीता तथा कफ, खाँसी, कण्ठदोष, त्वचादोष, शोथ, व्रण और खुजलीनाशक है।

सिरदर्द में—यदि वायु से सिर में पीड़ा हो तो मुचुकुन्द का फूल और एरंड की जड़ काँजी के साथ पीसकर सिर पर लगाना चाहिए।

शिरोरोग में—यदि सूर्यावर्त्त अर्धावभेदक हो तो केवल मुचुकुन्द पीसकर लगाना चाहिए।

पशुरोग में—यदि गाय-भैंस को सूखा पाखाना आए एवं वे बराबर दुर्बल होते जा रहे हो तो मुचुकुन्द की छाल का रस आधसेर, नारियल का पानी आध सेर, दोनों के साथ गिलोय छ तोले पीसकर प्रतिदिन प्रा तकाल पिलाना चाहिए। सात दिनों तक।

गुदभ्रंशरोग में—मुचुकुन्द के पुष्प की राख मक्खन के साथ मिलाकर लगानी चाहिए।

कुन्द

स० हि० कुन्द, व० कुन्दगाछ, म० कुन्द, गु० कुन्द, क० सुरागि और तै० मोल्ल।

कुन्द का फूल सफेद रंग का अतीव मनोहर होता है। इसकी सुगन्ध भीनी, किन्तु प्रिय होती है। मधुमक्खियाँ इससे विशेष प्रेम रखती हैं। इसका पौधा छोटा होता है। उसे किसी प्रकार का आश्रय दे देने से वह लता के रूप में परिणत हो जाता है। इसकी लता चमेली की लता के समान होती है। आश्विन और कार्तिक मास में इसमें विशेष पुष्प आते हैं। इसका पुष्प वेला के आकार का, किन्तु उससे कुछ लम्बा होता है। इसकी माला भी बनाई जाती है।

कुन्दोतिमधुर शीत कपायः केशभावनः।
कफपित्तहरश्चैव सरो दीपनपाचन. ॥—रा० नि०

कुन्द—अत्यन्त मधुर, शीतल, कषैला, केशों को प्रिय, सारक, दीपन, पाचन तथा कफ-पित्तनाशक है।

पित्त शान्ति के लिए—कुन्द का पुष्प पीसकर पीना चाहिए।

दाह में—यदि शरीर मे पित्त की अधिकता से दाह होती हो, तो कुन्द के पुष्पों का विशेष प्रयोग करना चाहिए।

विष में—मूसा के काट लेने पर कुन्द का रस लगाना चाहिए।

कदम्ब

स० कदम्बक, हि० कदम्ब, कदम, व० कदमगाछ, म० कलंब, गु० कदम्ब, क० कडउ, तै० किडिमिचेट्टु, अ० कदम्ब और लै० ऐंथोसिफलस केडंवा—Anthocephalus Cadumba.

कदम्ब की सृष्टि भी बड़ी महत्वपूर्ण है। इसका जीवन भी धन्य है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की प्रेम-लीला में इसका भी एक विशिष्ट स्थान था। इसका पुष्प बड़ा प्रिय प्रतीत होता है। वृन्दावन में तो, कहा जाता है कि इसके अनेक बड़े-बड़े जंगल हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है। प्रायः सभी प्रान्तों में न्यूनाधिक रूप में इसके वृक्ष पाए जाते हैं। इसका पत्ता बड़ा और मोटा होता है। उसका आकार महुआ के पत्ते के समान होता है। इसका फल गोल

और नींबू जितना बड़ा, किन्तु धतूरे-जैसा होता है। इसका फूल फल के ऊपर निकलता है। वह सुगन्धित और छोटा-छोटा होता है। इसकी माला भी बनाई जाती है। यह कई प्रकार का होता है। राजकदम्ब, धूलिकदम्ब, धाराकदम्ब, भूमिकदम्ब और कदम्बिका। बकुल के समान यह भी नर और मादा—दो जाति का होता है। इसके वृक्ष प्रायः नगरों के निकटवर्ती स्थानों में विशेष पाए जाते हैं। इसकी सुगन्ध बड़ी प्रिय होती है। इसकी चटनी, अचार और मुरब्बा भी बनाया जाता है।

कदम्बः कटुकस्तिक्तो मधुरस्तुवर पटु.।
शुक्रवृद्धिकर शीतो गुरुविष्टम्भकारक ॥
रूक्ष स्तन्यप्रदो ग्राही वर्ण्यश्चयोनिदोषहा।
रक्तरुङ्मूत्रकृच्छ्रं च वातपित्तं कफम् व्रणम् ॥—शा० नि०

कदम्ब—कड़वा, तीता, मधुर, कषैला, खारी, शुक्रवर्द्धक, शीतल, भारी, विष्टम्भकारक, रूखा, दुग्धवर्द्धक, ग्राही, वर्ण्य तथा योनिदोष, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, वात, पित्त, कफ और व्रणनाशक है।

आँख की बीमारी में—कदम्ब की छाल का रस, नीबू का रस, अफीम और भुनी हुई गुलाबी फिटकिरी एक साथ घोटकर तथा गरम करके लगाना चाहिए।

मुखरोग में—कदम्ब की छाल के काढ़ा से कुल्ला करना चाहिए।

फोड़ा में—कदम्ब का फल उबाल कर और नमक मिलाकर बाँधना चाहिए।

अरुचि में—कदम्ब का फूल पीसकर नमक मिलाकर खाना चाहिए।

दूध बढ़ाने के लिए—कदम्ब का अंकुर पीसकर मिश्री के साथ प्रातःकाल सेवन करना चाहिए।

केवड़ा

स० केतकी, स्वर्णकेतकी, हि० केवड़ा, केतकी, व० क्यायाल्ल, सोणाकेया, म० श्वेतकेवड़ा, केतकी, गु० केवड़ा, क० केदगे, तै० मुगलीपुवु, मोगिलिचेट्टु, अ० कादी, फा० करज और लै० पेन्डनस ओड्राटिजिमस—Pandanus Ododratissimus.

यदि कोयल काली न होती तो संसार उस पर न जाने क्या न निछावर कर देता। उसी प्रकार यदि केवड़ा के पत्तों पर काँटे न होते तो न मालूम यह कितना अधिक और भी आदरणीय बन जाता। वास्तव में इसकी सुगन्ध इतनी अधिक प्यारी होती है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसकी सुगन्ध पानी और कत्था सुवासित करने से लेकर अन्य जिन-जिन पदार्थों में सुवास की आवश्यकता होती है, काम लाया जाता है। यह अर्क बनाने एवं इत्र तैयार करने के काम आता है। गुलाब और केवड़ा ये ही दो पुष्प विशेष रूप से इस काम आते हैं। केवड़ा के पुष्प से सुवासित शैया पर शयन करने से बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता है।

केवड़ा की सुवास और वीणा की झंकार अथवा वीणाविनिन्दित स्वरवती षोड़शी का मधुर आलाप भला किस मानव हृदय को आनदित नहीं कर सकता। वास्तव में ये पुष्प हमारी शृंगार सामग्री के अनुपमेय रत्न-भाण्डार हैं। मनुष्य केवल पुष्पों के सहारे जितना आमोद-प्रमोद प्राप्त कर सकता है, उतना हीरा-मोती के आभूषणों से नहीं। पुष्पों में भी कुछ ही गिने-गिनाए पुष्प हैं, जो प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्योपासक होने की सूचना प्रदान करते हैं। उन्हीं में से केवड़ा अथवा केतकी है। केवड़ा को ही संस्कृत में केतकी भी कहते हैं।

केवड़ा के वृक्ष बाग एवं नदी अथवा सलिल के सुकूल पर होते हैं। इसका मुंड दस-बारह फिट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते लम्बे-लम्बे और काँटेदार होते हैं। यह भारत के अनेक प्रान्तों मे पाया जाता है। इसके पत्ते कडे, किन्तु चिकने होते हैं। काँटे कठोर नहीं होते, किन्तु अपने स्वभावानुकूल धँसने की क्षमता अवश्य रखते हैं। इसके पत्ते स्पर्श मे अत्यन्त शीतल होते हैं। इसका जगल बड़ा सघन होता है। इसकी खेती की जाती है। सर्प इसकी सुगन्ध पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार रहता है। इसका आकार प्राय एक फिटतक लम्बा पाया जाता है। यह सफेद रंग का होता है। पत्तों के भीतर कन्दसा होता है। वही इसके सुगन्ध का प्राण है। अथवा यों कहिए की वही तत्व है। इसका अर्क, तेल, इत्र, आदि बनाया जाता है। एक किसी कुए का जल

सुवासित करने के लिए एक या दो केवड़ा पर्याप्त होगा। श्रावण मास में यह विशेष पाया जाता है, क्योंकि वही मास इसके विकसित होने का है। यों तो यह सदैव मिलता रहता है। यह दो प्रकार का होता है। केवड़ा और केतकी। संस्कृत में केवड़ा को केतकी और केतकी को स्वर्णकेतकी कहते हैं।

केतकी का क्षुप छोटा होता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे और अधिक सुकुमार होते हैं। इसकी गंध भी बड़ी उग्र होती है। इसका फूल पीला होता है। इसकी पंखुरियाँ अधिक सुकुमार और कुछ लम्बी होती हैं। यह वर्षा-ऋतु में विशेष पाई जाती है। इसका पुष्प सुगन्ध की दृष्टि से तथा देखने में भी विशेष सुन्दर होता है। इसका विलायती सेंट भी आता है। इसके सुगन्ध में अपने ढंग की निराली मादकता होती है।

केतकी कटुका स्वाद्वी लघ्वी तिक्ता कफापहा।—शा० नि०

केवड़ा—चरपरा, स्वादिष्ट, हलका, तीता और कफनाशक है।

केतकी वातला वृष्या तन्द्रानिद्राकरी मता।—आ० स०

केतकी—वातकारक, वृष्य तथा तन्द्रा और निद्रा को करनेवाली है।

प्रदर में—यदि रक्तस्राव होता हो तो केवड़ा की जड़ और मिश्री शीतल जल के साथ पीस-छानकर पीनी चाहिए।

मृगी में—केवड़ा की केसर और केतकी के फूल का चूर्ण सूंघना चाहिए।

सिरदर्द में—यदि गरमी से सिरदर्द हो तो केवड़ा के अर्क के साथ चदन घिस कर उसी में मिला दिया जाय तथा उसे एक बोतल मे भरकर पतले कपड़े से मुँह बन्द कर दिया जाय और बार-बार उसे हिलाकर सूंघना चाहिए।

प्रमेह में—केतकी की जड़ उबालकर दो तोले रस निकाल लें और उसमें एक तोला मिश्री मिलाकर पी जायँ।

दाह में—केवड़ा के पत्ते के रस में जीरा और मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

कंठरोग में—केवड़ा की केसर को सिगरेट की भाँति कागज के भीतर भरकर उसका धूम्रपान करना चाहिए।

खुजली में—केतकी के पत्ते का रस लगाना चाहिए। यदि गरमी मालूम हो तो स्नान करना चाहिए।

अशोक

स० अशोक, हि० अशोक, ब० अस्पाल, म० अशोक, गु० आशुपालो और लै० गुटेरिया लॉंजीफोलिया—Guatteria Longifolia.

अशोक का पुष्प वास्तव में जितना सुन्दर देखने में मालूम होता है, उतना सुगन्धित नहीं होता। किन्तु इसका दर्शन बड़ा प्रिय है। यदि विधि ने इसे अन्य पुष्पों की भाँति सुवास प्रदान

की होती तो यह वास्तविक एक अपूर्व वस्तु होती। यह दो प्रकार का होता है। एक के पत्ते रामफल के समान होते हैं, और फूल नारंगी के रंग जैसा होता है। इसका फूल माघ-फाल्गुन में आता है। किन्तु यह निम्नश्रेणी का अशोक माना गया है।

दूसरे का फूल किंचित पीलापन लिए होता है। इसमे चौमासे मे फल आते हैं। इसका कच्चा फल नीला और पक्का लाल होता है। इसका फल खाया नहीं जाता। यहाँ तक कि इसके बीज का भी कोई विशेष उपयोग नहीं होता। इसकी पत्ती आम के पत्ते के समान; जरा नुकीली और सब ओर से ऐंठी होती है। आम की अपेक्षा यह सुकुमार अधिक होती है। बगीचों की शोभा के लिए इसका वृक्ष प्राय चारो ओर लगाया जाता है। हिन्दुओं में अशोक का वृक्ष शुभ माना गया है। इसका उपयोग औषध में भी होता है। प्राय: सभी शुभ अवसरों पर इसकी वन्दनवार बनाई जाती है। अशोक की छाया शीतल और अत्यन्त सघन होती है।

अशोक· शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यं· कषायकः।
दोषापचीतृषादाहक्रिमिशोषविषास्रजित् ॥—भा० प्र०

अशोक—शीतल, तीता, ग्राही, वर्ण्य, कषैला तथा अपची-दोष, तृषा, दाह, कृमि, शोथ, विष और रक्तविकार नाशक है।

दाह में—अशोक का पुष्प पीसकर लगाना चाहिए।

मुहाँसा में—अशोक का पुष्प, मसूर की दाल और नारंगी का छिलका बकरी के दूध के साथ पीसकर उबटन की तरह लगाना चाहिए।

कृमिरोग में—अशोक का फूल और भाभीरंग का काढ़ा बनाकर पीना चाहिए।

पियावाँसा

स० कुरण्टक, हि० पियावाँसा, व० झाँटि, म० कोरटा, गु० काटाअशेलियो, क० होवणदगोरटे, ते० गोरेंटु और लै० वार्लेरिया प्रायोनिटस—Barleria Prionitis

पियावाँसा को ही संस्कृत में कुरण्टक कहते हैं। इसके वृक्ष वन और वागों में विशेष पाए जाते हैं। यह पाँच प्रकार का होता है। सफेद, पीला, नीला, लाल और काला। इसके वृक्ष काँटेदार होते हैं। पाँचों प्रकारवालों के वृक्ष और पत्ते एक-से होते हैं। किन्तु जिस समय यह फूलता है, उस समय इसका अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक का वर्गीकरण उसके पुष्प के रंग-द्वारा होता है। इसका वृक्ष तीन-चार हाथ ऊँचा होता है। इसके सम्पूर्ण अंग में काँटे होते हैं। इसके पुष्प निर्गन्ध होते हैं। किन्तु देखने में सुन्दर प्रतीत होते हैं।

सरेय कुष्ठवातास्रकफकण्डुविषापहः।
तिक्तोष्णो मधुरोनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जन ॥—भा० प्र०

सफेद फूलवाला पियावाँसा—तिक्त, उष्ण, मधुर, अम्ल, चिकना, केशरंजक तथा कुष्ठ, वात, रक्तविकार, कफ, खुजली और विषनाशक है।

पीत· कुरण्टकश्चोष्णस्तिक्तश्च तुवरः स्मृत· ।
अग्निदीप्तिकरो वातकफकण्डूहर· स्मृत ॥
शोथ रक्तविकारं च त्वग्दोषं चैव नाशयेत् ।—शा० नि०

पीले फूलवाला पियावाँसा—गरम, तीता, कषैला, अग्निदीपक तथा वात, कफ, खुजली, शोथ, रक्तविकार और त्वचादोषनाशक है।

नील कुरण्टकस्तिक्त कटुर्वातकफापहः ।
शोथकण्डूशूलकुष्ठव्रणत्वग्दोषनाशनः ॥—शा० नि०

नीले फूलवाला पियावाँसा—तीता, कड़वा तथा वात, कफ, शोथ, खुजली, शूल, कुष्ठ, व्रण और त्वचादोषनाशक है।

नीलझिण्टी तु कटुका तिक्ता त्वग्दोषनाशिनी ।
दन्तरोग कफं शूलं वात शोथ च नाशयेत् ॥—शा० नि०

काले फूलवाला पियावाँसा—चरपरा, तीता तथा त्वचादोष, दन्तरोग, कफ, शूल, वात और शोथनाशक है।

रक्त कुरण्टकस्तिक्तो वर्ण्यश्चोष्ण· कटु· स्मृत· ।
शोथं ज्वर वातरोगं कफं रक्तरुज तथा ॥
पित्तमाध्मानकं शूलं श्वासं कास च नाशयेत् ।—नि० र०

लाल फूलवाला पियावाँसा—तीता, वर्ण्य, उष्ण, कड़वा तथा शोथ, ज्वर, वातरोग, कफ, रक्तविकार, पित्त, आध्मान, शूल, श्वास और कासनाशक है।

धातुरोग में—सफेद फूलवाले पियावाँसा के पत्ते के रस में जीरा का चूर्ण मिलाकर सात दिनों तक सेवन करना चाहिए।

पित्तशान्ति के लिए—पियावाँसा, तुलसी और भंगरैया की पत्ती के समान भाग रस में समान भाग गाय का दूध मिलाकर पीना चाहिए।

दन्तरोग में—यदि दाँत में पीड़ा होती हो तो पीले फूलवाले पियावाँसा की पत्ती और अकरकरा एक साथ कूटकर दाँत के नीचे दबाना चाहिए।

मुखरोग में—यदि मुँह मे छाले पड़ गए हों तो पीले फूल-वाले पियावाँसा की पत्ती और जामुन की छाल का काढ़ा बनाकर कुल्ला करना चाहिए।

गर्भस्थिति के लिए—पियावाँसा की जड़ गाय के दूध के साथ घिसकर ऋतुकाल मे पीने से निश्चय ही गर्भधारण की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

दन्तरोग में—यदि दाँतों से खून निकलता हो तो पियावाँसा के फूल का रस और शहद मिलाकर लगाना चाहिए। यदि कीड़े पड़ गए हों तो पियावाँसा की पत्ती कूचकर दाँत के नीचे दबानी चाहिए।

वातरोग में—पियावाँसा का फूल, देवदारु और सोंठ समान भाग काढ़ा बनाकर और अपनी शक्ति के अनुसार एरंड तैल मिला-कर पीना चाहिए। यह प्रयोग उसी के लिए उपयोगी है; जिसे सन्धिवात, शरीर-पीड़ा आदि के साथ-ही-साथ मलबद्धता का भी विकार हो।

शोथरोग में--पियावाँसा के पत्ते का रस लगाना चाहिए।

बिच्छू के विष में--पियावाँसा की पत्ती का रस दंश-स्थान पर लगाना चाहिए।

दाह में---पियावाँसा का फूल पीसकर लगाना तथा मिश्री मिलाकर खाना भी चाहिए।

दुपहरिया

स० वन्धूक, हि० दुपहरिया, व० वान्धुलिफुलेरगाछ, म० दुपारीचें फूल, गु० वपोरियो, क० बंदुरे, तै० नितिमल्ली और लै० पेंटापस फोरिन्श्या—Pentapels Phorinceea.

दुपहरिया की सृष्टि में भी प्रकृति ने अपने अपूर्व कला-कौशल का परिचय दिया है। यह कितना सटीक वैज्ञानिक सिद्धान्त इसमे भरा है, जिसे देखकर आजकल के उन्नत वैज्ञानिक भी दाँतों तले उँगली दबाए रह जायँगे। यह एक दूसरी बात है कि अपनी झेंप मिटाने के लिए अंट-संट कुछ वर्णन भले ही कर जायँ। दुपहरिया का फूल उस समय खिलता है, जब सूर्य का मध्यकाल होता है। अर्थात् मध्याह्न के समय यह खिलता है। इसके वृक्ष बगीचों एवं दृश्य उपवनों में लगाए जाते हैं। इसके फूल चार प्रकार के होते हैं। सफेद, लाल, सिन्दूरी और काला। इसका पेड़ कमर जितना ऊँचा और ऊपर फैला होता है। इसकी सुगन्ध अच्छी होती है।

इसमें पाँच पखुरियाँ होती हैं। और उनमें एक पतला, किन्तु छोटा तन्तु होता है। उस तन्तु के ऊपर पीतवर्ण पराग होता है। फूलों का रंग चार प्रकार का बताया जा चुका है, किन्तु वृक्ष सबों के एक-से होते हैं। फूल के बिना यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक रंग का पुष्प किसमें होता है।

बन्धुजीवको ग्राही किंचिदुष्णो गुरुर्मतः।
कफकृज्ज्वरहृद्वातपित्त चैव विनाशयेत्॥
पिशाचग्रहबाधां च नाशयेदिति कीर्तित।—शा० नि०

दुपहरिया—ग्राही, किंचित् गरम, भारी, कफकारक तथा ज्वर, वात, पित्त, पिशाच और ग्रहबाधानाशक है।

निद्रालाने के लिए—दुपहरिया के रस में तिल का तेल और कपूर मिलाकर सिर पर लगाना चाहिए।

अतीसार में—दुपहरिया के रस में जायफल घिसकर नाभी पर लेप करना चाहिए।

वातरोग में—यदि सन्धिवात हो तो दुपहरिया का फूल सरसों के तेल के साथ पकाकर उसी तेल की मालिश करनी चाहिए।

मखमली

स० स्थूलपुष्पा, हि० मखमली, म० मखमाल, गु० मुखमल, अ० इमाहम, फा० काजेखरूस, अँ० फ्रेंच मेरी गोल्ड—French mary Gold और लै० टेजिटिस इरेक्टा—Tagetes Eracta.

मखमली का फूल देखने में बड़ा सुन्दर होता है। किन्तु किसी प्रकार की सुगन्ध इसमे नहीं होती। इसका पौधा तीन-चार फिट ऊँचा होता है। इसकी पीली, लाल, झुमकेदार आदि अनेक जातियाँ होती हैं। इसके पत्ते लम्बे और कटे होते हैं। उपवन और निवास-कानन में लोग केवल शोभार्थ लगाते हैं। इसमें गन्ध नाममात्र के लिए भी नहीं होती। इसके वृत्त प्रायः भारतीय सम्पूर्ण प्रान्तों में पाए जाते हैं।

झण्डु कटुः कषायः स्याज्ज्वरभूतग्रहापहा।—रा० नि०

मखमली—कड़वा, कषैला तथा ज्वर एवं भूत और ग्रहबाधादिकों का नाशक है।

आँख की बीमारी में—यदि आँखों में लाली हो तो मखमली का फूल, गाय का घी और कपूर समान भाग खरल करके अंजन करना चाहिए।

फोड़ा में—यदि फोड़े से पतला पानी-सा निकलता हो तो मखमली के पत्ते के रस में झुटकी घिसकर लेप करना चाहिए।

अर्श रोग में—यदि रक्तार्श मे अधिक रक्त स्राव होता हो और वह किसी प्रकार न रुकता हो तो मखमली के फूल का हरा रेशा निकाल कर उस फूल को पीसकर रस निकाल लें और एक तोला रस एक तोला गाय का घी मिलाकर पी जायँ।

अड़हुल

स० ओड्रपुष्प, हि० अड़हुल, व० जवाफूलेरगाछ, म० जासवंद, गु० जासुम, क० दासनल, तै० मंदारपु, अँ० शोफ़ावर—Shoeflower और लै० हिबिस्कस रेजासिनेसिसा—Hibiscus Rosasinensisa.

अड़हुल का पुष्प बड़ा सुन्दर होता है। किन्तु इसमें किसी प्रकार की सुगन्ध नहीं होती। यदि इसमें सुगन्ध का आविर्भाव हो जाय तो यह कहना पड़ेगा कि वास्तव में सोने में सुगन्ध वाली उक्ति चरितार्थ हो जाय। किन्तु विधि ने सुगन्ध की सृष्टि इसके लिए नहीं की है। इसके वृक्ष मध्यमाकार के होते हैं। इसके वृक्ष जगल और वागादिकों में विशेष पाए जाते हैं। इसकी खेती होती है। इसके पत्ते अड़ूसे के पत्ते के समान होते हैं। फूल छोटा और पतला गिलास-जैसा लम्बा होता है। उसके नीचे हरे रग की तिकोनी कटोरी-सी चिपकी रहती है। उससे लगी हुई पतली-सी डठी होती है। जिससे फूल वृक्ष में लगा रहता है। इसका फूल तीन या चार पंखुरियोंवाला होता है। उसके बीच में से एक लम्बा, किन्तु पतला-सा लालरंग का डंठल निकलता है। उसका अग्रभाग कुछ मोटा होता है। उसपर छोटे-छोटे बीज-से लगे रहते हैं। यह सफेद और लाल जाति-भेद से अठारह प्रकार का माना जाता है। औषधि के उपयोग में केवल इसके फूल की पंखुरियाँ ही आती हैं।

देवी-उपासक तांत्रिक लोग इसे भगवती के प्रसन्नार्थ चढ़ाते हैं। जहाँ पर शक्तिउपासक व्यक्ति अधिक संख्या में वास करते हैं, वहाँ यह अधिकता से पाया जाता है। अड़हुल का लाल फूल विशेष मिलता है। कहा जाता है कि अड़हुल का लाल फूल चाकू से काट-कर यदि नीबू काटा जाय, तो नीबू से लाल रंग का ही रस निकलता है।

जपापुष्पं लघु ग्राहि तिक्तं केशविवर्द्धनम्।—नि० र०

अड़हुल का फूल—हलका, ग्राही, तीता और केशवर्द्धक है।

वातरोग में—अड़हुल के पत्ता का रस एक छटाँक प्रतिदिन पीना चाहिए। सात दिनों तक ऐसा करने से वातगुल्म नष्ट हो जाता है।

पित्तशान्ति के लिए—एक छटाँक सफेद अड़हुल के फूल के रस में एक तोला मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

गर्भस्थिति के लिए—छः माशे सफेद अड़हुल की जड़ आध पाव एकवर्णी गाय के दूध के साथ पीसकर तथा दो माशे बिजौरा के बीया का चूर्ण मिलाकर मासिकधर्म के समय पाँच दिनों तक पीना चाहिए।

गर्भस्राव में—सफेद अड़हुल की जड़ छः माशे, कुम्हार के चाक की मिट्टी एक माशा, सफेद चन्दन दो माशे एक पाव गाय के दूध के साथ मिलाकर पीना चाहिए।

शिरोरोग में—यदि सिर का बाल उड़ गया हो तो अड़हुल का फूल और अगर की पत्ती का रस समभाग मिलाकर लगाना चाहिए।

प्रदर में—अड़हुल की पखुरियाँ घी के साथ भूनकर और समान भाग मिश्री मिलाकर प्रतिदिन प्रात काल दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

धातुरोग में—अड़हुल, सेमल की जड़ और सतावर समान-भाग घी के साथ भूनकर और समान भाग मिश्री मिलाकर प्रति-दिन एक तोला, दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

अर्शरोग में—यदि रक्तस्राव होता हो तो अड़हुल का फूल घी के साथ भूनकर तथा समान भाग मिश्री और अष्टमाशा नाग-केशर मिलाकर शीतल जल के साथ लेना चाहिए।

अतीसार में—यदि दस्त के साथ खून जाता हो तो चार माशे अड़हुल का फूल, एक माशा खून खरावा और मिश्री, शीतल जल के साथ पीसकर पीना चाहिए।

बहुमूत्र में—सफेद अड़हुल की जड़ छ. माशे, दो तोले घी के साथ पीसकर पीना चाहिए। प्रतिदिन प्रात काल।

प्रमेह में—सफेद अड़हुल की जड़ छ माशे, एक पाव गाय के ताजे दूध के साथ पीसकर प्रतिदिन दोनों समय सेवन करना चाहिए। तेल, मिर्च, गरम पदार्थ एव वातकारक पदार्थों का सेवन न करना चाहिए। इससे प्रदर, रक्तार्श, उपदश और अन्य प्रकार के सभी धातुरोगों में विशेष लाभ पाया गया है।

धातुरोग में—सफेद अड़हुल की जड़, कमल की जड़, सफेद सेमल का कन्द, समान भाग चूर्णकर और समान भाग मिश्री

मिलाकर प्रतिदिन दोनों समय गाय के धारोष्ण दूध के साथ सेवन करना चाहिए। इससे धातु की पुष्टि और वृद्धि होती है।

फोड़ा में—यदि वलतोड़ अधिक हो तो प्रतिदिन अड़हुल का पाँच फूल मिश्री के साथ प्रातःकाल दो सप्ताह तक सेवन करना चाहिए।

प्रमेह में—यदि उदकमेह हो गया हो तो सफेद अड़हुल का फूल एक तोला तक प्रतिदिन मिश्री के साथ सेवन करना चाहिए।

अगस्त

स० अगस्त्य, हि० अगस्त, व० वक, म० अगस्ता, गु० अगथियो, क० अगसेधमरनु, तै० अनीसे, ता० अगंति, अँ० लार्ज-फ्लावर्ड एगेटी—Lourej flowered agety और लै० एगाटी ग्लांडी फ्लोरा—Augatı Glaundı floura.

अगस्त के पुष्प में किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती है। किन्तु पुष्प अच्छा होता है। इसके वृक्ष उपवनों मे अत्यधिक पाए जाते हैं। इसके पत्ते सहिजन की तरह होते हैं। इसके पेड़ पर विशेषकर नागरवेल चढ़ती है। इसलिए इसके पत्ते अच्छे मालूम होते हैं। इसका फूल सिंदूरिया और सफेद दो प्रकार का होता है। इसका फूल वड़ा कोमल होता है। जब अगस्त्य मुनि का उदय होता है, तभी इसके फूल खिलते हैं। इसका पेड़ वड़ा होता है और प्रायः

बगीचों में अपने-आप उत्पन्न हो जाता है। कुआर-कार्तिक मास में इसका फूल अधिक मिलता है। कहा जाता है कि कार्तिक मास में इसे अवश्य खाना चाहिए। इसके खाने से काय-शुद्धि होती है और मनुष्य पवित्र हो जाता है। इसका फूल थोड़ा टेढा होता है और बीच में से कई पतले-पतले डोरे निकले रहते हैं। इसके फूल का शाक और अचार बनाया जाता है। इसका पेड़ सात-आठ वर्ष के बाद जीवित नहीं रहता। खाने के काम केवल इसके सफेद फूल ही आते हैं।

> अगस्तिकुसुमं शीत चातुर्थिकनिवारकम्।
> नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषाय कटुपाकि च ॥
> पीनसश्लेष्मपित्तघ्न वातघ्न मुनिभिर्मतम्।—नि० र०

अगस्त का फूल—शीतल, तीता, कपैला, पाक मे कड़वा तथा चातुर्थक ज्वर, रतौंधी, जुकाम, कफ, पित्त और वातनाशक है।

सिरदर्द में—अगस्त के पत्ते का रस बूँद-बूँद करके नाक में छोड़ना चाहिए। इससे जुकाम और चातुर्थक ज्वर भी नष्ट हो जाता है।

शिरोरोग में—अर्धावभेदक शिर शूल में जिस भाग का सिरदर्द करता हो, उस भाग के दूसरे ओर अगस्त के फूल अथवा पत्ते का रस छोड़ना चाहिए।

भ्रमरोग में—अगस्त के पत्ते के रस में पाकड़ का फल, सोंठ और पीपर घिसकर सिरपर लेप करना चाहिए।

कफविकार में—लाल अगस्त की जड़ अथवा फूल का दो

तोले रस पिलाना चाहिए। शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक भी किया जा सकता है। बालको को छ' माशे रस चार बूँद शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

शोथरोग में—लाल अगस्त की जड़ और धतूरा की जड़ गरम पानी के साथ घिसकर लेप करना चाहिए।

वातरोग में—लाल अगस्त का फूल चार रत्ती से एक माशे तक पान मे रखकर खाना चाहिए।

मृगीरोग में—अगस्त के पत्ते का रस एक तोला, गोमूत्र एक छटॉक और काली मिर्च का चूर्ण एक माशा एक साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए।

अरुचि में—सफेद अगस्त का फूल घी के साथ भूनकर खाना चाहिए। इससे सब प्रकार की अरुचि में लाभ होता है।

पारिजात

स० पारिजात, हि० पारिजात, हरसिंगार, म० प्राजक्त, गु० हारशणगार, अँ० स्केरसटेल्केड नेटिंथिआ—Squarestalked Nytnacthea और लै० नेक्रॅथिस अर्वोट्रिस्टिस—Nyc-ranthes Arbotristis.

वास्तव मे पारिजात का पुष्प भी अत्यन्त सुकुमार, सुगन्धयुक्त और बड़ा-ही चित्ताकर्षक होता है। इसकी सुगन्ध बड़ी प्रिय होती है। यह रात के समय ही खिलता है। वर्षा-ऋतु में यह खिलता

है । यदि इसका एक पेड़ निवास-कानन मे रहे तो वह और उसके आस-पास के सभी निवासी इसकी सुमधुर सुगन्ध से उन्मत्त हो झूमने लग जाते हैं । नीरव रजनी, वर्षा-ऋतु, श्यामा का वामभाग में निवास, रिम-झिम मेघ, पारिजात का कानन, वीणा का सुमधुर स्वर और चन्दन-केसर का आह्लाददायक लेपन भला किस मानव-हृदय को सुख नहीं पहुँचा सकता ? इस आनन्द की तुलना स्वर्ग-सुख से भी नहीं की जा सकती । वास्तव में अब तक जितने पुष्पों का वर्णन किया जा चुका है, वे सभी इसकी मदमाती सुगन्ध के समक्ष तुच्छ भी नहीं हैं । वह पुरुष भी धन्य है, जिसने अपनी पुष्प-वाटिका में पारिजात को प्रश्रय दिया है ।

इसके फूल की डंठी थोड़ी केसरिया रंग की होती है । कुछ लोग उन डंठियों को पीसकर उसमें वस्त्र रँगते और पहनते हैं । इसका पेड़ अधिक-से-अधिक दस-बारह फिट ऊँचा होता है । यदि इसकी कलम न की जाय तो यह अधिक बड़ा भी हो सकता है, किन्तु कलम कर देने से अधिक दृढ़ और प्रचुर पुष्प देनेवाला बन जाता है । पास रहकर यह उतना अधिक सुगन्धदायक नहीं होता, जितना दूर रहकर अपना सौरभ प्रदान करता है । इसका वृक्ष नीचे से पतला, किन्तु ऊपर जाकर फैल जाता है । इसका फूल छोटा, किन्तु सुन्दर होता है ।

रसः प्राजक्तपत्रस्य ज्वरघ्नस्तिक्तकः स्मृतः ।
पर्णखण्डसमायुक्तस्त्वचाकासविनाशनः ॥—शा० नि०

पारिजात—के पत्ते का रस तीता और ज्वरनाशक है। इसकी छाल पान के साथ खाने से खाँसी नष्ट हो जाती है।

कोदो का विष—पारिजात के पत्ते का रस पीने से नष्ट हो जाता है।

खुजली में—पारिजात के पत्ते का रस दूध के साथ मिलाकर लेप करना चाहिए।

गंडमाला में—पारिजात का पत्ता और बाँस का पत्ता पीस-कर लेप करना चाहिए।

प्रमेह में—यदि उदकमेह हो तो पारिजात की अंतर छाल का काढ़ा करके पीना चाहिए।

सर्प-विष में—पारिजात की पत्ती और अगर की छाल का समान भाग रस पीना चाहिए।

दाद में—पारिजात की पत्ती का रस लगाना चाहिए।

वमन में—यदि वमन होता हो, तो पारिजात का हार पहनना चाहिए, और पारिजात की पत्ती के रस में शहद मिलाकर पीना चाहिए।

कमल

स० हि० म० गु० कमल, व० पद्म, क० विलीयतावरे, ता० अम्बल, तै० कालावा, अ० करवुलमा, फा० नीलुफर, अँ० लोटस्— Lotus और लै० नीलवीयम स्पेसियोज़ुम—Nelumbium Speciosum

कमल की उत्पत्ति तड़ाग अथवा किसी भी जलाशय विशेष में होती है। जल के विना कमल की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसीलिए इसे जलज और पंकज आदि जल-सम्वन्धी नामों से सम्बोधित करते हैं। यह विशेषकर गभीर और निर्मल नीरवाले सरोवर में अधिक होता है। वास्तव मे कमल भी प्रकृति की अलौकिक रचना है। इसके पत्ते वडे-वडे, गोल और अत्यन्त पिच्छिल होते हैं। प्रकृति की अपूर्व और अद्भुत शक्ति है। कमल को, उत्पत्ति के लिए जल का ही स्थान दिया, किन्तु उसके पत्तों को इतनी अद्भुत पिच्छिलता प्रदान की, कि उसपर जल का एक विन्दु भी नहीं ठहर सकता। पत्ते देखने में अत्यन्त नेत्र-रजक और मनोहर होते हैं। इन पत्तों के नीचेवाली डठी को मृणाल अथवा कमल-नाल कहते हैं। यह डठी वहुत लम्बी होती है। किन्तु भीतर से पोली रहती है। इसके भीतर एक रज्जु होती है, जिसे कमल-रज्जु कहते हैं। इसकी डठी के ऊपर फूल आते हैं। कमल की उपमा कवि लोग नेत्र, कर, पाद आदि की देते हैं। इसके पत्ते की उपमा स्त्रियों के

पीठ की दी जाती है। चन्द्रमा के प्रकाश मे कमल का विकसित पुष्प भी वंद हो जाता है।

कमल—श्वेत, अरुण, नील, असित आदि भेद से अनेक प्रकार का होता है। इसका पुष्प अत्यन्त सुन्दर होता है। कमल की विभिन्न जातियो के कारण विभिन्न प्रकार के पुष्प भी होते हैं। कमल पुष्प मे पहले वड़े-बड़े और शुक्ति के आकारवाले कई आवरण होते हैं। उसके भीतर कमल झुमका-सा डाल से लगा होता है। उस झुमके के चारो ओर पीतवर्ण के पतले डोरे-से होते हैं। इन्हीं को कमल-केशर कहते हैं। कमल के उस भीतरी झुमके पर जो रस लगा रहता है, उसे कमल-मकरन्द अथवा पराग कहते हैं। उस झुमके के भीतर ऊपर मुखवाला, जो छोटा-छोटा बीज-सा होता है, उसे कमलगट्टा कहते हैं। यही जब भून दिया जाता है, तब तालमखाना के नाम से मिलता है। इसी की जड़ को भसीड़ अथवा कमलकन्द कहते हैं। इसका शाक वड़ा स्वादिष्ट होता है।

'कल्हार' नामक कमल की एक विशेष जाति होती है। इसके पत्ते भी कमल की ही तरह, किन्तु उससे कुछ छोटे होते हैं। कल्हार का फूल भी कमल के फूल से भिन्न आकार का होता है। इसका फूल सफेद, सुकुमार और छोटा होता है। वर्षा मे इसमे अधिक पुष्प आते हैं।

श्वेतं तु कमलं शीतं स्वादु तिक्तं कषायकम्।
मधुरं वर्ण्यकृच्चक्ष्यं रक्तदोष कफापहम्॥

पित्तशान्ति के लिए—कमल का रस एक तोला, एकपाव गाय के दूध के साथ मिलाकर पीना चाहिए।

प्रमेह में—उदकमेह में प्रतिदिन प्रात काल सफेद कमल की कन्द एक तोला, गाय का घी एक तोला, जीरा दो माशे, घुंघची तीन दाना और चार माशे मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए।

दाह में—कमल और केला के पत्ते पर शयन करना चाहिए।

ज्वर में—यदि पित्तज्वर हो तो कमल, मुलेठी और मिश्री का समान भाग काढ़ा बनाकर अष्टमांश रह जाने पर देना चाहिए।

कुमुद

स० हि० कुमुद, व० हेलाफुल, म० पांढ़रे उत्पल, गु० पोयणा और क० विलियेते इटिलु।

कुमुद भी कमल के समान ही होता है। रक्त, श्वेत और नील-पुष्प रंग भेद से यह तीन प्रकार का होता है। कुमुद के पुष्प कमल-पुष्प से छोटे होते हैं। यह रात में चन्द्रमा के उदय होने पर खिलते हैं। यह भी सरोवर में ही होता है। सूर्योदय से किंचित् पूर्व ही पुनः बन्द हो जाते हैं। इसके पत्ते फूल के ऊपर ही लगते हैं। इसमे जावित्री के समान कोप होता है। उसी कोष का फल बनता है। कच्ची अवस्था में इसके भीतर से लालरंग के दाने निकलते हैं। पक जाने पर यही दाने काले हो जाते हैं। इसके फल को घंबोल कहते हैं। इसकी जड़ को चाच अथवा सालक कहते हैं।

कुमुद शीतलं स्वादु पाके तिक्तं कफापहम् ।
रक्तदोषहरं दाहश्रमपित्तप्रशान्तिकृत् ॥—रा० नि०

कुमुद—शीतल, स्वादिष्ट, पाक में तीता तथा कफ, रक्त-विकार, दाह, श्रम और पित्तनाशक है ।

रक्तपित्त में—कुमुद एक तोला, मिश्री एक तोला, नाग-केशर चार माशे, सोलहगुने जल के साथ पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर पीना चाहिए।

दाह में—कुमुद का पत्ता पीसकर लगाना चाहिए ।

पित्तशान्ति के लिए—कुमुद के रस में शहद मिलाकर पीना चाहिए ।

पलाश

स० हि० पलाश, व० पलाशगाछ, म० पलस, गु० खाखर, क० मुत्तलु, ता० परशन्, तै० मातुकाचेट्टु, अँ० डाउनी ब्रांच ब्यूटिया—Downy branch butıya और लै० ब्युटिया पार्विफ्लोरा—Butıya Porvıfflora

पलाश के वृहद्काय वृक्ष प्राय नदी की तलेटी और पार्वत्य प्रदेश में होते हैं। इसके पत्ते एक-एक डंठी में तीन-तीन आते हैं। इसी पर एक लोकोक्ति है कि 'ढाक के वही तीन पात ।' पहले ये पत्ते लाल रग के छोटे-छोटे होते हैं। बड़े होने पर ये हरे रग के हो जाते हैं। इसका पत्ता एक ओर एकदम हरा और दूसरी

ओर कुछ सफेदी लिए रोएँ-जैसा मालूम होता है। इसके फूल की डंठी काली और फूल अरुणाभ होता है। इसमें फलियाँ लम्बी-लम्बी आती हैं। इसके बीज गोल और चिपटे होते हैं। इसका वृक्ष भारत के अनेक प्रांतो मे पाया जाता है। इसका पत्ता और फूल औपध के उपयोग मे आता है। इसकी लकड़ी अत्यन्त पवित्र मानी जाती है और हवन आदि मे काम आती है। यह दो प्रकार का होता है। एक का फूल लाल और दूसरे का सफेद। लाल फूल का रंग के लिए विशेष उपयोग होता है। इसके बीज का लाल रंग बनता है। पलाश में से गोंद भी निकलती है। इसकी गोंद रंग बनाने के काम मे भी आती है। इसके प्राय चार रंग के फूल पाए जाते हैं। इस प्रकार से यह पुष्प-रंग-भेद से अनेक प्रकार का होता है। किन्तु औपध के उपयोग मे एकमात्र सफेद रंगवाला ही आता है।

तत्पुष्प स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम्।
वातलं कफपित्तास्रकृच्छ्रजिद्ग्राहि शीतलम्॥
तृड्दाहशमन वातरक्तकुष्ठहरं परम्।—भा० प्र०

पलाश का फूल—स्वादिष्ट, पाक मे कड़वा, तीता, कषैला, वातकारक, शीतल तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह ,वातरक्त और कुष्ठनाशक है।

प्रमेह में—पलाश का ढाई तोले फूल, एक पाव पानी के साथ रात के समय मिट्टी के पात्र में भिगो दिया जाय। प्रात.काल उसे मल और छानकर डेढ़ तोला मिश्री मिलाकर पीजायँ। अथवा

पलाश के फूल के काढ़े में शहद मिलाकर पीएँ।

मूत्रकृच्छ्र में—पलाश का सूखा फूल दस तोले आध सेर जल के साथ भिगो दिया जाय, बाद उसे मंद अग्नि पर रखकर उस पात्र के मुखपर एक मिट्टी की परई में पानी भरकर रख दिया जाय। जब ऊपर के पानी से भाप निकलने लगे, तब फूलवाले पानी को छानकर एक पाव पी जायँ, तथा उस पुष्प को शीतल करके वस्तिस्थान पर बाँधे।

सर्पविष में—पलाश का फूल पीसकर पीना और लगाना चाहिए।

धव

स० हि० धव, व० धाऊयागाछ, म० धावड़ा, गु० धावड़ो, क० सिरिवरु, तै० नार्रिजचेट्ट और लै० एनोजिसस् लाटिफोलिया—Anogisus Latifolia.

धव का वृक्ष मझोले कद का होता है। इसके पत्ते अनार के पत्ते के समान होते हैं, किन्तु रंग में कुछ विभिन्नता रहती है। अनार की पत्ती कुछ नीले रंग की होती है और धव की कुछ पीलापन लिए रहती है। इसका फूल लवंग की तरह लाल रंग का होता है। धव के फूल कुछ खरखरे होते हैं। इसके फूल में कली नहीं होती। इसके वृक्ष की उँचाई पाँच से सात फिट तक पाई जाती है। इसका फूल रंग और औषधि के काम आता है। इसका पेड़ कोंकण

प्रान्त में विशेष पाया जाता है। औषध के उपयोग में इसकी छाल भी आती है।

पुष्पमस्या' स्वादु रूक्षं रक्तपित्तातिसारजित्।
विषनाशकरं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥—नि० र०

धव का फूल—स्वादिष्ट, रूखा तथा रक्तपित्त, अतीसार और विष नाशक है।

फोड़ा में—धव का फूल जवासा के तेल में खरल करके लगाना चाहिए। इससे आग का जला, विसर्प, कृमि, व्रण, लूता-व्रण और जीर्ण-नाड़ीव्रण नष्ट होता है।

अतीसार में—यदि गर्भिणी को अतीसार हुआ हो तो धव का फूल, मोचरस और इन्द्रजौ समान भाग चूर्ण करके दो माशा की मात्रा शीतल जल के साथ दिन में दो बार सेवन करनी चाहिए।

दन्तरोग में—बालको को दाँत निकलते समय धव के फूल और आँवला के समान भाग दो माशे रस मे पाँच बूँद शहद और आधी रत्ती पीपर का चूर्ण मिलाकर मसूढ़े पर रगड़ना चाहिए।

प्रदर में—धव के एक तोला फूल का अष्टमांश काढ़ा तीन दिनों तक पीना चाहिए अथवा धव के फूल का रस चार तोले, छः माशे मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

ज्वर में—वात-कफ ज्वर में धव की पत्ती और सोंठ का काढ़ा शहद मिलाकर पीना चाहिए।

सिरस

स० शिरीष, हि० सिरस, व० शिरपिगाछ, म० शिरसी, गु० शिरीष, क० शिरसु, तै० दिरसन, अ० सुलतानुल् असजार, फा० दरखते जकरिया और लै० आल्वीज्जिया लेवेक—Albizzia Lebbek

सिरस के वृक्ष वडे और सघन जगलो में होते हैं। इसके पत्ते आमले के समान छोटे-छोटे, डालियों में वरावर होते हैं। इसके फूल छोटे-छोटे, किन्तु तन्तुओं में सुसज्जित एवं अत्यन्त कोमल होते हैं। ये पुष्प हरे, पीले, सुगन्धित, सुन्दर और सुकुमार होते हैं। इसकी फली चपटी, पतली और चार-पाँच अँगुल से लेकर आठ अँगुल तक लम्बी होती है। फलियों के भीतर भूरे रग के वीज होते हैं। एक फली से दस वीज तक निकलते पाए जाते हैं। एक प्रकार का सफेद फूल भी होता है। यह वारीक होता है। इसमें रेशम की भाँति रेशे भी निकलते हैं। फूल के भीतर का जीरा पतला और खोखला होता है। औषध के काम में इसकी छाल और वीज आते हैं। इसके वीज का तेल भी निकाला जाता है। यह तेल नेत्ररोग के लिए उपयोगी है।

> शिरीषः कटुकः शीतो विषवातहरः परः।
> पामास्रकुष्ठकण्डूतिस्वग्दोषस्य विनाशनः॥—रा० नि०

सिरस—कड़वा, शीतल तथा विष, वात, खुजली, कुष्ठ

और त्वचादोष-विनाशक है ।

खुजली में—सिरस का फूल अथवा छाल पीसकर लगाएँ।

कुष्ठरोग में—सिरस की छाल बकरी के दूध के साथ पीसकर लगाने से श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है ।

वातरोग में—सिरस का फूल और छाल पीसकर सरसों के तेल में पकाकर वही तेल लगाना चाहिए । यह सन्धिवात, मन्यास्तम्भादिक रोगो मे लाभदायक है ।

नेत्ररोग में—सिरस के बीज का तेल अजन की भाँति लगाना चाहिए । यह प्रयोग फूली, मोतियाविन्दु आदि रोगो के लिए उपयोगी कहा जाता है ।

रोहेड़ा

स० रोहितक, हि० रोहेड़ा, व० रोढ़ा, म० रोहिड़ा, गु० रोहिड़ो, क० यरड्डमल, तै० मुलुमोदुगचेट्टु और लै० टेकोमा अण्डयुलेटा—*Tecoma undulata.*

इसके वृक्ष प्राय जंगलो में विशेष पाए जाते हैं । पुष्प अनार-जैसे श्वेत और रक्तवर्ण के होते हैं। राजनिघंटुकार ने रोहेड़ा और कूटशाल्मली को एक ही वस्तु माना है । और भी कुछ निघंटुकारों ने कूटशाल्मली और रक्तरोहितक को एक ही वस्तु मानकर उसका गुणावगुण लिखा है । किन्तु भावप्रकाशकार ने रक्तरोहितक और

कूटशाल्मली को दो वस्तु मानकर उसकी विवेचना की है। श्वेत और रक्त दोनों प्रकार के रोहेड़ा समान गुणवाले होते हैं।

रोहितकौ कटुस्निग्धौ कषायौ च सुशीतलौ।
कृमिदोषव्रणप्लीहारक्तनेत्रामयापहौ ॥—रा० नि०

दोनों प्रकार का रोहेड़ा—कड़वा, चिकना, कपैला, शीतल तथा कृमिदोष, व्रण, प्लीहा, रक्तविकार और नेत्ररोगनाशक है।

अर्शरोग में—लाल रोहेड़ा और बड़ा हर्रा का कल्क गोमूत्र के साथ सेवन करना चाहिए। इससे प्लीहा, मेदरोग, कृमि और गुल्म नष्ट होता है।

रक्त-विकार में—लाल रोहेड़ा का चूर्ण छ माशे तक मक्खन के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इतनी ही मात्रा में घी के साथ सेवन करने से छाती का दर्द और छाती के रक्त-विकारजन्य चकत्तों में भी लाभ होता है।

प्रदर में—लाल रोहेड़ा की जड़ का कल्क शहद के साथ खिलाना चाहिए।

चोट लग जाने में—लाल रोहेड़ा की जड़ का चूर्ण छः माशे प्रतिदिन दिन में तीन बार घी के साथ देना चाहिए, और इसकी छाल पानी के साथ घिसकर लेप करनी चाहिए।